❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ५ { गौराब्द ४७४, मास—मधुसूदन ३, वार-कारणोदशायी
बृहस्पतिवार, १ वैशाख, सम्वत् २०१७, १४ अप्रैल १९६० } संख्या १०-११

श्रीश्रीकेशवाचार्य्याष्टकम्

(त्रिदण्डिस्वामी-श्रीमद्भक्तिवेदान्त-त्रिविक्रम महाराज-कृतः)

नमो ॐविष्णुपादाय आचार्य्य-सिंह-रूपिणे ।
श्रीश्रीमद्‌भक्तिप्रज्ञान-केशव इति नामिने ॥१॥

श्रीसरस्वत्यभीप्सितं सर्वथा सुष्ठु-पालिने ।
श्रीसरस्वत्यभिन्नाय पतितोद्धार-कारिणे ॥२॥

ॐ विष्णुपाद श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव नामक आचार्य-सिंहको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

जो (जगद्‌ गुरु) आचार्य श्रील सरस्वती प्रभुपादके अभीप्सित अथवा मनोभीष्टका सर्वतोभावेन सुष्ठुरूपसे पालन करने वाले हैं एवं जो पतित-उद्धारके कार्योंमें उन्हीं श्रील सरस्वतीठाकुरसे अभिन्न हैं, उन्हें नमस्कार है ॥२॥

वज्रादपि कठोराय चापसिद्धान्त नाशिने ।
सत्यस्यार्थे निर्भीकाय कुसंग-परिहारिणे ॥३॥

जो अपसिद्धान्तोंका ध्वंस करने, दुःसंग दूर करने तथा सत्यका स्थापन करनेमें निर्भीक और वज्रकी अपेक्षा भी कठोर हैं, उन्हें नमस्कार है ॥३॥

अतिमर्त्य-चरित्राय स्वाश्रितानाञ्च पालिने ।
जीव-दुखे सदार्त्ताय श्रीनाम-प्रेम-दायिने ॥४॥

जो अतिमर्त्य (अप्राकृत) चरित्रविशिष्ट हैं, जो अपने आश्रितजनोंके पालनकर्ता हैं, जो जीवोंके दुःखसे सर्वदा ही दुःखी हैं तथा जो नाम-प्रेम प्रदान करने वाले हैं, उनको नमस्कार है ।

विष्णुपाद-प्रकाशाय कृष्ण-कामैक-चारिणे ।
गौर-चिन्ता-निमग्नाय श्रीगुरुं हृदि धारिणे ॥५॥

जो साक्षात् श्रीविष्णुपादपद्मके प्रकाशस्वरूप हैं, जो केवल कृष्ण-कामनाकी पूर्तिमें ही लगे रहते हैं, जो चैतन्य महाप्रभुकी चिन्तामें निमग्न हैं तथा जिन्होंने अपने श्रीगुरुदेवको सर्वदा हृदयमें धारण कर रखा है, उन्हें नमस्कार है ।

विश्वं विष्णुमयमिति स्निग्ध-दर्शन-शालिने ।
नमस्ते गुरु-देवाय कृष्ण-वैभव-रूपिणे ॥६॥

जो विश्वको विष्णुमय दर्शन करते हैं । ऐसे स्निग्ध दर्शनसे युक्त, कृष्ण-वैभवरूपी श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ।

श्रीश्रीगौड़ीय-वेदान्त-समितेः स्थापकाय च ।
श्रीश्रीमायापुर-धाम्नः सेवा-समृद्धि-कारिणे ॥७॥

जो गौड़ीय वेदान्त समिति के संस्थापक हैं एवं (श्रीगौर-जन्मस्थान) श्रीश्रीमायापुर धामकी सेवाको समृद्धि करने वाले हैं, उनको नमस्कार है ।

नवद्वीप-परिक्रमा येनैव रक्षिता सदा ।
दीनं प्रति दयालवे तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥८॥

जिनकेद्वारा श्रीधाम नवद्वीप-परिक्रमा सदा रक्षिता है एव जो दीनजनोंके प्रति दयालु हैं, उन श्री-गुरुदेव-को नमस्कार है ।

देहि मे तव शक्तिस्तु दीनेनेयं सुयाचिता ।
तव पाद-सरोजेभ्यो मतिरस्तु प्रधाविता ॥९॥

हे गुरुदेव ! यह दीन व्यक्ति सब प्रकारसे आपके शक्तिकी (कृपाकी) कामना करता है, उसे मुझे दान करें । आपके पाद-पद्मोंमें मेरी मति लगी रहे ।

संत (सज्जन) के लक्षण

मित्रता---२३

प्राणीमात्रके बन्धु या हितैषीको धर्मात्मा या मित्र कहते हैं। सज्जन पुरुष सबके मित्र होते हैं। ये तीन प्रकारके होते हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। जो भगवानकी पूजा करते हैं, परन्तु भगवद्भक्तोंके प्रति उदासीन रहते हैं, वे कनिष्ठ हैं। जो भगवानकी पूजा दृढ़ श्रद्धाके साथ करते हैं और साथ ही भगवद्भक्तोंके प्रति मित्रताका व्यवहार रखते हैं, वे मध्यम हैं एवं जो चेतन-अचेतन समस्त पदार्थोंमें सर्वत्र ही भगवत्-भाव दर्शन करते हैं, वे उत्तम कोटिके सज्जन हैं। मध्यम अधिकारमें भगवान, भक्त और भक्तिके विद्वेषी अभक्तोंकी उपेक्षा करना कर्त्तव्य होता है, परन्तु उत्तम अधिकारमें विद्वेषियोंके प्रति उपेक्षा धर्म नहीं है। कनिष्ठ अधिकारमें भक्त-अभक्त पहिचाननेका विवेक नहीं होता; मध्यम अधिकारमें उसका विवेक होता है और उत्तम अधिकारमें अभक्त भी भक्त प्रतीत होते हैं।

सज्जन सम्पूर्ण जगतके कल्याणकारी हैं

कनिष्ठाधिकारी सज्जन कौन भक्त है, कौन अभक्त है, इसका विवेचन करनेमें असमर्थ होता है। इस लिये वह किसी भी व्यक्तिका विरोध नहीं करता, सबके साथ साधारणतः समानरूपमें भद्र व्यवहार करनेकी कोशिश करता है। परन्तु अधिकारकी उन्नतिके साथ-साथ ज्यों ही वह मध्यमाधिकारमें उपनीत होता है, उसे भक्त-अभक्तका विवेक हो जाता है। ऐसी दशामें वह दोनोंके प्रति एक सा व्यवहार न कर भक्तके प्रति मित्रता और अभक्तके प्रति उदासीनताका भाव अवलम्बन करता है। परन्तु गूढ़ रूपसे विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी वह उदासीनता भी अभक्तोंके प्रति शत्रुता अथवा निर्दयताका व्यवहार नहीं, बल्कि मित्रताका ही व्यवहार है। जिस प्रकार एक चिकित्सक एक सड़े हुए घावकी निष्ठुरतापूर्वक चीर-फाड़ द्वारा चिकित्सा कर रोगीके कल्याणकी ही कामना करता है, उसी प्रकार मध्यमाधिकारी सज्जन पुरुष असदाचारी अभक्तके प्रति उदासीन रह कर—उसका दुःसंग परित्याग कर भी उसके प्रति मित्रताका ही व्यवहार करता है। मायावादी, कर्मी और अन्याभिलाषी व्यक्ति मध्यमाधिकारी सज्जनोंकी इस मित्रतापूर्ण व्यवहारको समझनेमें असमर्थ होनेके कारण उसे मित्रतापूर्ण व्यवहार होनेमें संदेह करते है। भक्तजन अभक्तोंसे उदासीन रहकर एवं भौतिक जड़ज्ञानमें मत्त स्मार्त्तोंकी स्मार्त क्रियाओंका परित्यागकर जो पारमार्थिक-स्मृतिका अनुगमन करते हैं, उससे समाज का प्रचुर कल्याण होता है। सज्जनवृन्द प्रत्येक अधिकारमें सम्पूर्ण जगतका यथार्थ कल्याण करते हैं, दूसरे नहीं; इसीलिये सज्जन पुरुषोंको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी मित्रता संभव नहीं है।

शिक्षक बालकोंके हितके लिये, उसे सुशिक्षा प्रदान करनेके लिये क्रोध प्रकाश करते हैं, कभी कभी उसे मारते-फटकारते भी हैं, माँ अपने बच्चोंको कभी-कभी मारती-पीटती और धमकाती है; परन्तु जिस प्रकार शिक्षक और माताके ऊपरसे निष्ठुर जैसे लगनेवाले व्यवहारोंके भीतर सम्पूर्ण रूपसे मित्रता अर्थात् कल्याणका ही भाव ओतःप्रोत रहता है, उसी प्रकार सज्जन पुरुषोंके हृदयमें प्राणीमात्रके प्रति मित्रताका भाव ही ओतःप्रोत रहता है। उसकी प्रत्येक चेष्टा उसके प्रत्येक अनुष्ठान एवं प्रत्येक आचरणके अन्तरालमें अनंन्त कल्याणकी भावना छिपी रहती है, जिसे साधारण बुद्धिवाले मनुष्य समझ

नहीं पाते। इसीलिये वे सज्जन पुरुषोंकी मित्रताको सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं।

सज्जन पुरुष जगत्के यथार्थ और नित्य-बन्धु हैं; तात्कालिक मित्र नित्य-बन्धु नहीं कहे जा सकते हैं। इसका कारण यह है कि सज्जन पुरुष अर्थात संतजन जीवोंके ऐहिक और पारलौकिक सब तरहके कल्याणोंके लिये प्रयत्नशील रहते हैं; परन्तु तात्कालिक संसारी मित्रोंद्वारा यह संभव नहीं। जो मायिक शरीर और मनरूप विरूप वृत्तिको दूर कर जीवको उसके स्वरूपमें प्रतिष्ठित करा देते हैं, वे सज्जन श्रीगुरुवर्ग ही जीवोंका उद्धार करते हैं; मित्रताका यही चरमोत्कर्ष है।

कवि--२४

काव्य और कविकी संज्ञा; जड़ काव्य और जड़ कवियोंसे सज्जन पुरुषका भेद

रसात्मक वाक्यको काव्य कहते हैं। काव्य-रचयिता और काव्य आस्वादकको कवि कहते हैं। काव्य दो प्रकारके होते हैं—ग्राम्य-काव्य और अप्राकृत-काव्य। रस साधारणतः बारह प्रकारके होते हैं। इनमें पाँच स्थायी और सात गौण हैं। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच मुख्य या स्थायी रस हैं। हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, रौद्र, वीभत्स और भयानक—ये सात गौण रस हैं, जो मुख्य रसकी पुष्टि करते हैं। प्रकृतिके अन्तर्गत रस-समूह जड़काव्यके उपादान हैं, इनमें प्राकृत नश्वर अनुपादेय नायक-नायिका आलम्बनके रूपमें अचित् उद्दीपना द्वारा प्रचालित होकर अनुभाव, सात्विक और संचारी सामग्रियोंके साथ स्थायीभाव रतिके समिश्रणसे रसकी उद्भावना करते हैं। यह नितांत विरस और काव्य-नामके अयोग्य होता है। सज्जन वैसे कुकवि नहीं हुआ करते। वे अप्राकृत रसात्मक वाक्यमय काव्यमें सुपण्डित होते हैं। अप्राकृत काव्यके नायक व्रजेन्द्रनन्दनको आश्रय कर जो काव्य निर्झरित होते हैं, वे ही सज्जनोंके आस्वादनीय विषय हैं।

ग्राम्य कविके काव्य सिद्धान्त-विरुद्ध और रसाभास दोषसे दूषित होते है। सज्जन-प्रवर श्रीदामोदर-स्वरूपने कहा है—

ग्राम्य-कविर कविस्व सुनिते हय दुःख।
'यद्वा-तद्वा' कविर वाक्ये हय रसाभास।
सिद्धान्त विरुद्ध सुनिते ना हय उल्लास॥

(चै० च० अ० २।१०७,१०२)

जड़ कवि अतात्त्विक, नास्तिक और मायावादी होता है। अप्राकृत रस-तत्त्वके मर्मज्ञ श्रीस्वरूप गोस्वामीने एक प्राकृत मायावादी जड़ कविका चित्र बड़े मार्मिक शब्दोंमें व्यक्त किया है। एक बार पुरीमें एक जड़ कवि श्रीचैतन्य महाप्रभुको अपना एक काव्य सुनानेके लिये उनके भक्तोंसे बार-बार आग्रह करने लगा। श्रीमन्महाप्रभुका ऐसा नियम था कि वे केवल श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा परीक्षा किये गये काव्य, गीत आदि ही श्रवण करते थे। जब जड़ कविने स्वरूप दामोदरको अपना काव्य सुनाया, तो वे बड़े दुःखित हुए और बिगड़ कर बोले—तुमने बड़ा ही अनर्थ कर डाला है। भगवान श्रीजगन्नाथदेव पूर्णानन्द और पूर्ण सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं, परन्तु तुमने उनको प्राकृत जड़ नश्वर शरीर मात्र माना है। दूसरा अपराध तुमने यह किया है कि श्रीचैतन्य देव षड्ऐश्वर्यपूर्ण स्वयं-भगवान हैं; परन्तु तुमने उनको एक क्षुद्र अणुचैतन्य जीव बना दिया है—

पूर्णानन्द-चित्स्वरूप जगन्नाथ राय।
ताँरे कैले जड़ नश्वर-प्राकृत काय॥
पूर्ण षड्ऐश्वर्य चैतन्य-स्वयं भगवान्।
ताँरे कैले क्षुद्र-जीव स्फुलिंग समान्॥

(श्रीचैतन्य चरितामृत अ० ५।११८-११९)

श्रीभागवत-पत्रिका

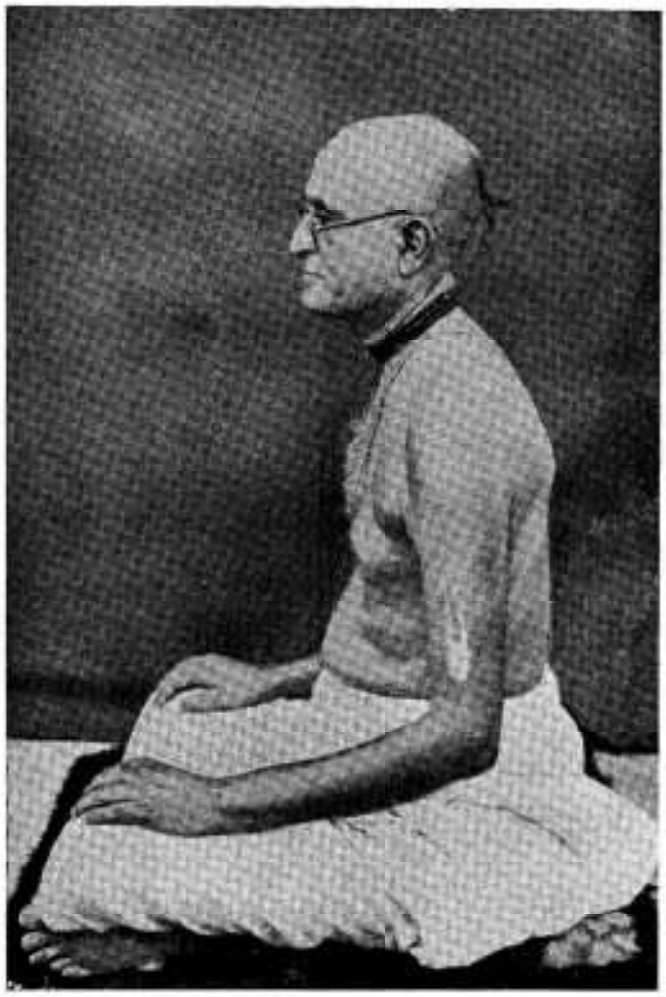

जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्री श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

यहाँ पर श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामीने यह दिखलाया है कि भगवान्‌के शरीरको जड़ बतलाना अथवा भगवानमें शरीरी और शरीरका भेद दर्शन करना—ये दोनों भयङ्कर अपराध हैं। अप्राकृत तत्त्वसे अनभिज्ञ जड़ कवि इन तत्त्वोंको अनुभव करने या समझनेमें असमर्थ है। इसलिये अप्राकृत तत्त्वके सम्बन्धमें जभी वह कुछ कहता है या लिखता है, उसमें दोष रहना अवश्यंभावी है। सज्जन पुरुष ऐसे काव्य श्रवण नहीं करते। श्रवण करनेसे उन्हें दुःख ही होता है। अप्राकृत रसज्ञोंके काव्यमें ये दोष संभव नहीं। अतएव सज्जन पुरुष अप्राकृत कवियोंके काव्यका बार-बार श्रवण करके भी तृप्त नहीं होते; उनको बड़ा आनन्द होता है। श्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामी एक तरफ जहाँ जड़ कविकी भर्त्सना करते हैं, वहीं दूसरी तरफ वे अप्राकृत कवि श्रीरूपगोस्वामीके काव्यकी भूयसी प्रशंसा करते हैं—

रूप जैछे दुई नाटक करियाछे आरंभ।
सुनिते आनन्द बाढ़े यार मुखबन्ध॥
दुई श्लोक कहि प्रभुर हैल महासुख।
निज भक्तेर गुण कहे हना पंचमुख॥
कह, तोमार कवित्व सुनि हय चमत्कार।
राय कहे—'तोमार कवित्व अमृतेर धार॥'
(चैतन्यचरितामृत)
राय कहे—'रूपेर काव्य अमृतेर धार।'
(चैतन्यचरितामृत)
रूपेर कवित्व प्रशंसि सहस्र वदने।
(चैतन्यचरितामृत)
मधुर प्रसंग इँहार काव्य अलंकार।
ऐछे कवित्व बिना नहे रसेर प्रचार॥
(चैतन्यचरितामृत)

जड़ और अप्राकृतमें नित्यभेद है, ग्राम्य-कवि अप्राकृत-कवियों और अप्राकृत काव्योंका अनादर करते हैं

ग्राम्य कविकी कविताओंके आस्वादक वास्तवमें कवित्वकी उपलब्धि करनेमें असमर्थ होते हैं। ये लोग ग्राम्य कविताओं और ग्राम्य कवियोंको ही श्रेष्ठ समझते हैं। राय रामानन्द, श्रीदामोदर स्वरूप एवं स्वयं सौन्दर्य रत्नाकर अभिन्नव्रजेन्द्रनन्दन श्रीगौर-सुन्दरने श्रीरूपको और श्रीरूपके काव्यकी बड़ी सराहना की है, जिसे आधुनिक ग्राम्यरसके रसिक कतिपय तथाकथित साहित्यिक आदरकी दृष्टिसे नहीं देखते। यदि ये लोग सज्जन होते, तो ग्राम्य कवियों और उनके काव्योंकी अनुपादेयता और त्रुटियोंको हृदयङ्गम कर पाते और हरिप्रेमोन्मत्त कवियोंके काव्योंका उत्कर्ष स्वीकार किये बिना न रह सकते। लोगोंकी रुचि भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। दुर्जनकी रुचि और सज्जनकी रुचिमें भेद है, मूर्ख और पण्डितकी रुचिमें भेद है, अज्ञ और अभिज्ञकी रुचि पृथक-पृथक होती है। इसी प्रकार जड़ रसके रसिकों और भगवद्रसके रसिकोंमें निश्चय ही भेद है।

यथार्थ कवि कौन हैं?

संत अर्थात् सज्जन पुरुषोंमें ही कवित्वका सौन्दर्य पूर्णरूपसे विकसित होता है। परन्तु जड़-रसके रसिक उसका आस्वादन करनेमें असमर्थ होते हैं। परम भागवत सज्जन शिरोमणि श्रीहंसवाहन ब्रह्मा, वाल्मिकि और श्रीवेदव्यासने भगवद्रसका वर्णन किया है तथा उसका आस्वादन किया है, ये सज्जन शिरोमणि ही 'महाकवि' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके अनुगत अनेक सज्जनवृन्द भी कविके नामसे प्रख्यात् हैं। आज भी साहित्यके भंडारमें वैसी-वैसी अमूल्य निधियोंका अभाव नहीं है। ये सभी सज्जन हैं। वैष्णव कवियोंको साहित्य-भण्डारसे निकाल देने पर उसका मूल्य ही क्या रह जाता है?—इसे तो साहित्यिक और कवि-परिचयाकांक्षी ग्राम्य कवि भी विचार कर देख सकते हैं।

असत् समाजकी चेष्टाओंका उद्देश्य

असत् समाजमें एक ऐसी रुचि भी प्रबल है कि हरिरस-मदिरापानोन्मत्त व्यक्तियोंको कवि न माना

जाय। बल्कि कवि उन्हें कहा जाय जो जड़ मदिरा-मत्त इन्द्रियपरायण निरीश्वर और दुर्नीतिपरायण हैं। सज्जन पुरुष इसका कदापि अनुमोदन नहीं कर सकते। श्रीजयदेव, श्रीविल्वमंगल आदि सज्जनोंका अनादर कर जो लोग ग्राम्य कवियोंका आदर करते हैं, वे सज्जन-समाजमें प्रवेश करेंगे—इसकी आशा नहीं। बिना सज्जन हुए यथार्थ कवि नहीं हुआ जा सकता है। श्रीचैतन्यचरितामृतके लेखक परम सज्जन श्रीकृष्णदास 'कविराज' नामसे ही प्रसिद्ध हैं। सज्जन नित्य कवि होते हैं, चिन्मय और आनन्दमय होते हैं। उनके काव्योंकी तुलना दूसरोंसे नहीं की जा सकती है।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी

अभिधेय विचार—ज्ञान

ज्ञानको भी कहीं कहीं परमार्थ सिद्धका उपाय बतलाया गया है। परब्रह्म जड़से परे हैं, जीवात्मा भी जड़से परे है। ज्ञानवादी-सम्प्रदायका सिद्धान्त यह है कि कोई जड़ातीत क्रिया ही जड़ातीत परमार्थ-सिद्धिका एक मात्र उपाय हो सकती है। कर्म यद्यपि संसार और शरीर-यात्रा-निर्वाहक होता है, तथापि वह स्वयं जड़ होनेके कारण जड़ातीत परमार्थ तत्त्व के अनुशीलनमें सर्वदा अनुपयोगी होता है। कर्म-द्वारा परमेश्वरमें चित्तको लगानेका अभ्यास हुआ करता है, परन्तु जड़ाश्रित-कर्मोंका परित्याग किये बिना नित्यफलकी प्राप्ति नहीं की जा सकती है। केवल आध्यात्मिक प्रयत्नोंसे ही आध्यात्मिक फलकी प्राप्ति होती है। सर्वप्रथम प्रकृतिकी आलोचना करते-करते धीरे-धीरे प्रकृतिकी समस्त सत्ता और गुणोंका वर्जन कर ब्रह्म-समाधिद्वारा जीव ब्रह्मसम्पत्ति को प्राप्त होता है।

जबतक जीव जड़ शरीरमें निवास करता है, तबतक शरीर सम्बन्धी कार्य स्वीकार्य हैं। ऐसे ज्ञान को दो भागों विभक्त किया गया है। एक ब्रह्मज्ञान, दूसरा भगवत्-ज्ञान। ब्रह्मज्ञान द्वारा आत्माके ब्रह्म-निर्वाण रूप फलका उद्देश्य होता है। निर्वाणके पश्चात् आत्माकी कोई स्वतन्त्र सत्ता ब्रह्मज्ञानी स्वीकार नहीं करते। उनके विचारसे ब्रह्म निर्विशेष होता है एवं आत्मा मुक्त होने पर निर्विशेष होकर ब्रह्ममें लय हो जाती है। शास्त्रमें ऐसे साधनको बड़ा ही हेय बतलाया गया है—

> ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
> सर्वत्रगमचिन्त्यञ्च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
> संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
> ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूत हिते रताः॥
> क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त-चेतसाम्।
> अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥
>
> (गीता १२।३-५)

जो इन्द्रिय-समूहको भलीभाँति रोककर, सर्वत्र समबुद्धि होकर तथा सम्पूर्ण भूतोंके हितोंमें रत रहकर अक्षर, अनिर्देश्य, अव्यक्त, सर्वव्यापक, अचिन्त्य, कूटस्थ, अचल और नित्य ब्रह्मकी उपासना करते हैं अर्थात् ज्ञानमार्गका अवलम्बन कर निर्विशेष ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन करते हैं, वे भी मुझ सर्वैश्वर्यपूर्ण भगवानको ही अन्तमें प्राप्त होते हैं। परन्तु उन अव्यक्तमें आसक्त चित्तवालोंको अधिक क्लेश भोगना पड़ता है, क्योंकि शरीरी बद्धजीवोंके लिये अव्यक्तगति दुःखजनक होती है।

उपर्युक्त श्लोकोंका तात्पर्य यह है कि ब्रह्मज्ञानके

अनुशीलनद्वारा जीवकी जड़-बुद्धि दूर होने पर सत्संग और भगवत्कृपाके सहारे सर्वशक्तिसमन्वित अप्राकृत विशेषताओंसे पूर्ण षड्ऐश्वर्यपूर्ण भगवत्-तत्त्वकी प्राप्ति होती है । जड़-जगतके भाव-समूह मानव-समाधिको इतना दूषित कर देते हैं कि अहंकारसे लेकर पाँचों स्थूल-भूतों तक प्रकृतिको दूर करके समाधिकी प्रारम्भिक अवस्थामें निर्विशेष ब्रह्मको लक्ष्य करना आवश्यक हो जाता है । परन्तु जिस समय आत्मा जड़-यन्त्रणासे ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त होती है, तब कुछ समयके भीतर ही बुद्धिके स्थिर होने पर समाधि-नेत्र द्वारा वैकुंठके 'विशेष' को देख पाती है । ऐसी दशामें अनिर्देश्य ब्रह्म दर्शन-शक्तिको ढक नहीं पाता । क्रमशः वैकुंठका सौन्दर्य आध्यात्मिक नेत्रोंको आकर्षित करने लगता है । यहीं पर ब्रह्मज्ञान भगवत् ज्ञान हो पड़ता है । भगवत् ज्ञान उदित होने पर भगवत्-रहस्य भी प्राप्त हो जाता है। अतएव परमार्थ प्राप्तिके साधकरूप ज्ञानको, अभिधेय तत्त्वके अन्तर्गत बतलाया गया है । भगवत् ज्ञानकी आलोचना करनेसे स्व-स्वरूपमें अवस्थित प्रयोजनरूपा विशुद्धा प्रीति पायी जानेकी संभावना अधिक होती है ।

ज्ञानके सम्बन्धमें और भी एक बात बतलानी आवश्यक है । ज्ञानकी स्वाभाविक अवस्था ही भगवत् ज्ञान है और अस्वाभाविक अवस्था अज्ञान और अतिज्ञान हैं । अज्ञान द्वारा प्राकृतपूजा और अतिज्ञानसे नास्तिकता और अद्वैतवाद उत्पन्न होता है ।

प्राकृत पूजा दो प्रकारकी होती है । एकमें भौम-मूर्त्तिको भगवान मानकर पूजा होती है और दूसरीमें प्राकृत धर्मको ही ब्रह्मज्ञान समझा जाता है । इनसे ही निराकार, निर्विकार, निरवयववादकी प्रतिष्ठा होती है । श्रीमद्भागवतमें भी इन दो श्रेणीकी जाओंके सम्बन्धमें उल्लेख है—

एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया ।
मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम् ॥
अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम् ।
अनादि-मध्य-निधनं नित्यं वाङ्मनसः परम् ॥
अमुनि भगवद्रूपे मया ते ह्यनुवर्णिते ।
उभे अपि न गृह्णन्ति माया सृष्टे विपश्चितः ॥
(भा० २।१०।३३-३५)

—मैंने पृथ्वी आदि आठ आवरणोंसे घिरे हुए भगवान्के स्थूल रूपका वर्णन तुम्हें सुनाया है । इसके अतिरिक्त एक सूक्ष्मरूप भी कल्पित होता है जो अव्यक्त, निर्विशेष; आदि, मध्य और अन्तरहित, नित्य एवं वाक्य और मनसे अतीत है । ये दोनों ही रूप प्राकृत हैं । सारग्राही पण्डित भगवानके स्थूल और सूक्ष्म रूपोंको त्याग कर अप्राकृत रूपका दर्शन करते हैं । अतएव साकार और निराकारवाद दोनों ही अज्ञानसे उत्पन्न और परस्पर विवदमान हैं ।

यदि युक्ति ज्ञानका अतिक्रमण कर तर्कनिष्ठ होती है तो वह आत्माको नित्य नहीं मानना चाहती । इसी दशामें नास्तिकताका उदय होता है । जब ज्ञान युक्तिके अधीन होकर अपने स्वभावका परित्याग करता है, तब वह आत्माके निर्वाणका अनुसंधान करने लगता है । इस अतिज्ञान से उत्पन्न चेष्टाके द्वारा जीवका कल्याण नहीं होता ।

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्ध-बुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदङ्घ्रयः ॥
(श्रीमद्भा० १०।२ ३२)

हे अरविन्दाक्ष ! जो लोग आपके प्रति भक्तिभाव से रहित होने के कारण आपके चरणकमलोंकी शरण नहीं लेते एवं ज्ञानसे उत्पन्न युक्तिको चरम फल समझ कर भक्तिका अनादर करते हैं, वे अपने को झूठ-मूठ मुक्त मानते हैं । वास्तवमें वे बद्ध ही हैं । वे अनेक कष्ट उठाकर परमपद प्राप्त होकर भी अतिज्ञान के कारण (भगवत चरणोंका अनादर कर) उससे नीचे गिर जाते हैं ।

सद्युक्ति द्वारा भी अतिज्ञान स्थापित नहीं हो

सकता है। निम्नलिखित चार विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

१—यदि ब्रह्म-निर्वाणको आत्माका चरम प्रयोजन स्वीकार किया जाता है, तो ईश्वरकी निष्ठुरतासे आत्माकी सृष्टि हुई है—ऐसी कल्पना करनी पड़ती है। क्योंकि ऐसी असत् सत्ताकी सृष्टि नहीं करनेसे और कष्ट भी नहीं होता। यदि ब्रह्मको निर्दोष प्रमाणित करनेके लिये यह कहा जाय कि सृष्टि माया द्वारा होती है,तो माया नामक एक और स्वाधीन तत्त्व स्वीकार करना पड़ेगा। फिर तत्त्व दो हो पड़ेंगे-एक माया और दूसरा ब्रह्म। परन्तु तत्त्व सर्वत्र एक ही माना गया है।

२—आत्माके ब्रह्मनिर्वाणसे न तो ब्रह्मको ही कुछ लाभ होता है और न जीवको ही।

३—परब्रह्मके नित्य-विलासके रहते हुए आत्माके ब्रह्मनिर्वाणकी आवश्यकता नहीं है।

४—भगवत शक्तिके उद्बोधनरूप 'विशेष' नामक धर्मको सभी अवस्थाओंमें नित्य स्वीकार नहीं करने से सत्ता, ज्ञान और आनन्दकी संभावना नहीं होती। उसके अभावमें ब्रह्मके स्वरूप और स्थितिका भी अभाव हो पड़ता है। ऐसी दशामें ब्रह्मके अस्तित्वके सम्बन्धमें संदेह होता है। 'विशेष' नित्य होने पर आत्माका ब्रह्मनिर्वाण नहीं होता।

मायावाद-शतदूषणी नामक ग्रन्थमें इस विषयका बड़ा ही हृदयस्पर्शी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। सुजिज्ञासुओंके लिये वह आदरकी चीज है।

ज्ञान और प्रीतिका सम्बन्ध भलीभाँति जान लेने पर ज्ञानी और प्रीति सम्प्रदायमें परस्पर विरोध नहीं रह जाता। आत्माका 'वेदन' धर्म ही उसका स्वरूपगत धर्म है। वेदन-धर्मकी दो व्याप्तियाँ होती हैं। (१) वस्तु और तद्धर्म-ज्ञानात्मक व्याप्ति, (२) रसानुभवात्मक व्याप्ति। पहली व्याप्तिका नाम ज्ञान है, वह स्वभावतः शुष्क और चिन्ताप्राय होता है। दूसरी व्याप्ति का नाम प्रीति है। वस्तु और तद्धर्मके अनुभव के समय आस्वादक और आस्वाद्यके बीच एक अपूर्व रसानुभूति होती है, ऐसी व्याप्तिका नाम प्रीति है। उक्त दो प्रकारकी व्याप्तियोंमें अर्थात् ज्ञान और प्रीतिके सम्बन्धमें एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि ज्ञानरूप व्याप्तिकी वृद्धि जितनी ही अधिक होती है, प्रीतिरूप व्याप्तिका उसी परिमाणमें ह्रास होता है और दूसरी ओर प्रीतिरूप व्याप्तिकी जिस परिमाणमें वृद्धि होती है, ज्ञानरूप व्याप्तिका उतने ही अधिक परिमाणमें ह्रास होता है। एक बात और भी बड़े महत्वका है। वह यह कि ज्ञान-व्याप्तिका सम्पूर्णतासे अवलम्बन होने पर मूल वेदन धर्म एक अखण्ड तत्त्व हो उठता है; परन्तु नीरसताकी सीमा प्राप्त कर सम्पूर्ण रूपसे आनन्दरहित हो पड़ता है। दूसरी ओर प्रीति-व्याप्ति सम्पूर्णतासे अवलम्बित होने पर ज्ञान-व्याप्तिके अकुंररूप वेदनधर्मका लोप नहीं होता; बल्कि वह सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनानुभूतिरूप चैतन्यका रूप धारण कर प्रीत्यात्मक आस्वादन रसका विस्तार करता है। अतएव प्रीति-व्याप्ति ही जीवका एक मात्र प्रयोजन है।

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

उपनिषद्-वाणी

प्रश्नोपनिषद् (तृतीय प्रश्न)

उसके बाद आश्वलायनमुनिने महर्षि पिप्पलादसे छः प्रश्न पूछे— (१) आपने जिस प्राणकी महिमा बतलायी है, वह प्राण किससे उत्पन होता है? (२) वह इस मनुष्य-शरीरमें किस प्रकार प्रवेश करता है? (३) अपनेको विभाजित करके किस प्रकार शरीरमें स्थित रहता है? (४) एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जाते समय पहले शरीरको किस प्रकार छोड़ता है? (५) इस बाह्य जगत्‌को किस प्रकार धारण करता है? तथा (६) मन, इन्द्रिय और अध्यात्मिक जगत्‌को किस प्रकार धारण करता है?

ये छः प्रश्न प्राणके सम्बन्धमें ही पूछे गये हैं, जिनका उत्तर पहलेके दो प्रश्नोंके उत्तरमें नहीं आसका है और जो पहलेके दो प्रश्नोंके उत्तरको सुनकर ही स्फुरित हुए है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रश्नोत्तरके समय वहाँ पर छहों ऋषि उपस्थित थे।

आश्वलायनके प्रश्नोंको सुनकर महर्षि पिप्पलाद बड़े प्रसन्न हुए। वे उसकी बुद्धिमता और तर्कशीलता की प्रशंसा करते हुए बोले— तुमने जिस ढंगसे प्रश्न किया है उससे ऐसा जान पड़ता है कि तुम श्रद्धालु और वेदोंमें निष्णात हो; अतः मैं तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दे रहा हूँ—

(१) जिसका प्रकरण चल रहा है वह सर्वश्रेष्ठ प्राण परमात्मासे उत्पन्न हुआ है। परमब्रह्म परमेश्वर ही इसके उपादान कारण हैं और वे ही इसकी रचना करनेवाले हैं; अतः इसकी स्थिति और आश्रय भी परमात्मा ही हैं—ठीक वैसे ही जिस प्रकार किसी प्रकार मनुष्यकी छाया उसके आश्रित अर्थात् अधीन रहती है।

(२) दूसरे प्रश्नका उत्तर यह है कि मनके द्वारा किये हुए संकल्पके अनुसार प्राण शरीरमें प्रवेश करता है अर्थात् मरते समय प्राणीके मनमें उसके कर्मानुसार जैसा संकल्प होता है, उसे वैसा ही शरीर मिलता है; प्राण भी उसीके साथ शरीरमें प्रवेश करता है।

(३) जिस प्रकार भूमण्डलका चक्रवर्ती सम्राट भिन्न-भिन्न ग्राम,मण्डल और जनपद आदिमें पृथक २ अधिकारियोंकी नियुक्ति करता है और उनका कार्य बाँट देता है, उसी प्रकार यह सर्वश्रेष्ठ प्राण भी अपने अंगस्वरूप अपान, उदान, व्यान, समान आदि दूसरे प्राणोंको शरीर के पृथक्-पृथक् स्थानोंमें पृथक-पृथक कार्यके लिये नियुक्त कर देता है। प्राण स्वयं मुख और नासिका द्वारा विचरता हुआ आँख और कान में स्थित रहता है। यह गुदा और उपस्थमें अपानको स्थापित करता है। आपानका काम मल-मूत्रको शरीर से बाहर निकालना है। रज-वीर्य और गर्भको बाहर करना भी इसीका काम है। शरीरके बीचोबीच-नाभिमें समानको स्थापित करता है। समानवायु प्राणरूप अग्निमें हवन किये हुए अर्थात् खाये हुए अन्नआदिको—उसके सारको सम्पूर्ण शरीरके अंग-प्रत्यंगमें यथायोग्य समभावसे पहुँचा देता है। उस अन्नके सारभूत रससे ही सात अर्चि अर्थात् दो नेत्र, दो कान, दो नाक, और एक मुख ये सातों समस्त विषयोंको प्रकाश करते हैं; उस रससे पुष्ट होकर ही ये अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ होते हैं।

शरीरके हृदय-प्रदेशमें जीवात्माका निवास-स्थान है। वहाँ पर एक सौ मूल नाड़ियाँ हैं; उनमेंसे प्रत्येक नाड़ीकी एक-एक-सौ शाखा-नाड़ियाँ हैं और प्रत्येक

शाखा-नाड़ीकी बहत्तर हजार प्रतिशाखा-नाड़ियाँ हैं। इस प्रकार इस शरीरमें कुल बहत्तर करोड़ नाड़ियाँ हैं; इन सबमें व्यान वायु विचरण करता है।

इन बहत्तर करोड़ नाड़ियोंसे भिन्न एक नाड़ी और है, जिसको 'सुषुम्ण' कहते हैं। यह हृदयसे निकलकर ऊपरमें मस्तकमें गयी है। इसके द्वारा उदान-वायु शरीरमें ऊपरकी ओर विचरण करता है। जो पुण्यवान होता है, जिसके शुभ कर्मोंका भोग उदय होता है, उसे यह उदान वायु ही उसके प्राण और इन्द्रियों को शरीरसे बाहर निकालकर स्वर्गादि पुण्यलोकोंमें ले जाता है और पापी मनुष्योंको शूकर-कूकर आदि पापयोनियोंमें और रौरवादि नरकोंमें ले जाता है तथा पाप और पुण्य मिश्रित फलोंको भोगानेके लिये मनुष्य शरीरमें ले जाता है।

सूर्य ही सबके बाह्य प्राण हैं। यह मुख्य प्राण सूर्यरूपसे उदय होकर शरीरके बाहरी अंग-प्रत्यंगोंको पुष्ट करता है और नेत्र-इन्द्रियरूप आध्यात्मिक शरीर पर अनुग्रह करता है अर्थात् उसे देखनेकी शक्ति प्रदान करता है। पृथ्वीमें जो देवता अपान वायुकी शक्ति है, वह मनुष्यके भीतर रहनेवाले अपान वायुको आश्रय देती है। अपान वायुकी शक्ति गुदा और उपस्थ इन्द्रियोंकी सहायक है तथा इनके बाहरी स्थूल आकारको धारण करती है। पृथ्वी और स्वर्गलोक के बीचका आकाश समान वायुका बाह्य-स्वरूप है। वह इस शरीरके बाह्य अंग-प्रत्यंगोंको अवकाश देकर इसकी रक्षा करता है और शरीरके भीतर स्थित समान-वायुको विचरण करनेके लिये शरीरमें अवकाश देता है। इसीकी सहायतासे कर्णेन्द्रिय शब्द सुनती है। आकाशमें विचरण करनेवाला प्रत्यक्षवायु ही व्यान-वायुका बाह्य- स्वरूप है। यह शरीरके बाह्य अंग-प्रत्यंगोंको चेष्टाशील बनाता है तथा शान्ति प्रदान करता है; भीतरी व्यान वायुको नाड़ियों में संचारित करने और त्वचा-इन्द्रियको स्पर्शका ज्ञान करानेमें सहायक होता है।

(४) सूर्य और अग्निका बाह्य तेज अर्थात् उष्णत्व उदानका बाह्य-स्वरूप है। यह शरीर के बाहरी अंग-प्रत्यंगोंको ठंडा नहीं होने देता और भीतरमें भी गरमीको स्थिर रखता है। जिसके शरीरसे उदान वायु बाहर निकल जाती है, उसका शरीर गरम नहीं रहता। शरीरके ठंडा होते ही उसमें रहनेवाला जीवात्मा मनमें विलीन हुई इन्द्रियोंको साथ देकर उदान वायुके साथ-साथ दूसरे शरीरमें चला जाता है अर्थात् पुनर्जन्म लाभ होता है।

(५) मरते समय जीवात्माका जैसा संकल्प होता है, अन्तिम समयमें मन जिस भावका चिन्तन करता है, उस संकल्पके अनुसार मन इन्द्रियोंके सहित मुख्य प्राणमें स्थिति हो जाता है। वह मुख्य प्राण उदान वायुसे मिलकर मन और इन्द्रियोंके सहित जीवात्मा को उस अन्तिम संकल्पके अनुसार यथायोग्य भिन्न भिन्न लोक अथवा योनिमें ले जाता है। गीतामें भी कहते हैं—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(गीता ८।६)

(६) अतएव मनुष्यका कर्त्तव्य यह है कि वह अपने मनको सर्वदा भगवानके चिन्तनमें ही नियुक्त रखे, जिसे दूसरे संकल्प न प्रवेश करें। शरीर क्षणभंगुर और अनित्य है; न जाने कब अचानक इस शरीरका अन्त हो जाय। यदि उस समय भगवान् का चिन्तन न हुआ तो दूसरे संकल्पके अनुसार असद्गति प्राप्त होनेकी संभावना है। यदि कोई विद्वान् इस रहस्यको समझ कर प्राणको सुरक्षित रखता है, असत् योनियोंमें जाने का संकल्प नहीं रखता है,तो उसकी संतानपरम्परा कभी नष्ट नहीं होती और वह स्वयं अमृतका अधिकारी हो सकता है अर्थात् जन्म-मरणरूप संसारसे मुक्त होजाता है।

चतुर्थ प्रश्न

तदनन्तर गार्ग्यमुनिने महर्षि पिप्पलादसे पाँच बातें पूछी– (१) गाढ़ निद्राके समय मनुष्यशरीरमें रहने वाले पूर्वोक्त इन्द्रियोंमेंसे कौन-कौन सोती हैं ?

(२) कौन-कौन जागती रहती हैं ? (३) स्वप्नावस्थामें इनमेंसे कौन स्वप्नकी घटनाओंको देखती रहती हैं ? (४) निद्राके समय निद्राका सुख किसे अनुभव होता है ? (५) और ये सब इन्द्रियाँ किसके आश्रित हैं ?

गार्ग्य मुनिके प्रश्नोंको सुनकर महर्षि पिप्पलादने इस प्रकार उत्तर दिया—

(१) जब सूर्य अस्त होता है उस समय चतुर्दिक फैली हुई उसकी सम्पूर्ण किरणें जिस प्रकार सूर्यमें अवस्थित हो जाती हैं, उसी प्रकार गाढ़ निद्राके समय सब-की-सब इन्द्रियाँ मनमें विलीन हो जाती हैं। इसलिये उस समय जीवात्मा न तो देखता है, न सुनता है, न सूँघता है, न स्वाद लेता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है, न चलता है, न ग्रहण करता है, न मल-मूत्रादि त्याग करता है और न मैथुन-सुख ही भोगता है। उस समय दसों इन्द्रियोंका कार्य सम्पूर्णरूपसे बन्द रहता है। लोग कहते हैं कि इस समय यह आदमी सो रहा है। उसके जागने पर वे सब इन्द्रियाँ पुनः मनसे पृथक् होकर अपना-अपना कार्य करने लगती हैं; ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार सूर्यके उदय होने पर उसकी किरणें पुनः चारों ओर फैल जाती हैं।

(२) निद्राके समय इस मनुष्य शरीर रूप नगरमें पाँच प्राणरूप अग्नियाँ ही जागती रहती हैं। निद्राको यज्ञका रूप देनेके लिये पाँचों प्राणोंको अग्निरूप बतलाया गया है। शरीरमें प्राणकी अपानवृत्ति ही गार्हपत्य अग्नि है; 'व्यान' दक्षिणाग्नि है; गार्हपत्य अग्निरूप अपान से प्राण उठते हैं, इसलिये मुख्य प्राणको ही आवाहनीय अग्नि कहा गया है। क्योंकि यज्ञमें आवाहनीय अग्निको गार्हपत्य अग्निसे उठा लिया जाता है। प्राणका श्वास-प्रश्वास रूपमें शरीर-से बाहर निकलना और भीतर लौट जाना ही मानों आहुतियाँ हैं। आहुति द्वारा शरीरके पोषक तत्त्व शरीरमें प्रवेश करते हैं; यही मानो हवि है। इस हविको आवश्यकतानुसार शरीरमें सर्वत्र सम भावसे पहुँचानेका कार्य समान-वायुका है। इसीलिये इसे समान-वायु कहते हैं। इसको होता या ऋत्विक कहते हैं। 'मन' यजमान है। उदान वायु ही उस यजमानका अभीष्ट फल है, क्योंकि जिस प्रकार अग्निहोत्र करनेवाले यजमानको उसका अभीष्ट फल उसे आकर्षित करके कर्मफल भोगानेके लिये कर्मा-नुसार स्वर्गादि लोकोंमें ले जाता है, उसी प्रकार यह उदान वायु मनको प्रति दिन निद्राके समय उसके कर्म फलके भोगरूप ब्रह्मलोकमें परमात्माके निवास स्थान हृदय-गुहामें ले जाता है। वहाँ मन द्वारा जीवात्मा निद्रा-सुखका अनुभव करता है। क्योंकि जीवात्माका निवास स्थान भी वही है। निद्राके समय ब्रह्मलोक (वैकुंठ) में ले जाना युक्ति-सङ्गत नहीं है, क्योंकि वहाँ जानेसे पुनरागमन नहीं होता। निद्रासुख तामस सुख है; किन्तु ब्रह्मसुख—त्रिगुणातीत होता है।

अब तीसरे प्रश्न—कौन इन्द्रियदेवता स्वप्न दर्शन करता है ?—का उत्तर देते हैं—स्वप्नावस्थामें जीवात्मा ही मन और सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा अपनी विभूतिका अनुभव करता है। स्वप्नसे पहले इसने जहाँ कहीं भी जो कुछ भी बार-बार देखा है, सुना है, अनुभव किया है, उसीको यह स्वप्नमें बार-बार देखता है, सुनता है और अनुभव करता है। परन्तु यह कोई नियम नहीं है कि जाग्रत अवस्थामें वह जिस प्रकार, जिस रूपमें, जिस जगह, जो घटना देखताहै, सुनता है और अनुभव करता है, ठीक उसी प्रकार वह स्वप्नमें भी देखे, सुने और अनुभव करे। बल्कि स्वप्नमें जाग्रतकालकी किसी घटनाका कोई अंश किसी दूसरी घटनाके किसी अंशके साथ मिलाकर एक नये रूपमें ही वह अनुभव करता है। वास्तवमें जो है या नहीं है उसे भी स्वप्नमें देखा, सुना और अनुभव किया जा सकता है। इस प्रकार स्वप्नकाल-में यह विचित्र ढङ्गसे सब घटनाओंका दर्शन करता है और स्वयं भी विचित्र रूप धारण करता है। उस समय जीवात्माके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं रहती।

(४) निद्रा-सुख किसे अनुभव होता है ?—इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं—निद्राके समय जब मन उदान-वायुके अधीन हो जाता है अर्थात् जब उदान-वायु मनको जीवात्माके निवास स्थान हृदय-गुहामें ले जाकर मोहित कर देता है, उस समय जीवात्मा मनके द्वारा स्वप्नकी घटनाओंको नहीं देखता है। उस समय निद्राजनित सुखका अनुभव जीवात्माको ही होता है। इस शरीरमें सुख-दुःखोंको भोगनेवाला जीवात्मा ही है। गीता (१३।२१) में भी कहा गया है—'पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्।'

(५) मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और प्राण किसके आश्रित हैं ?—इस पाँचवें प्रश्नका उत्तर महर्षि इस प्रकार देते हैं—आकाशमें उड़नेवाले पक्षीगण जिस प्रकार सायंकालमें लौट कर अपने निवासभूत वृक्षमें आश्रय लेते हैं, ठीक उसी प्रकार पृथ्वीसे प्राण तकके सभी तत्त्व सर्वात्मा परमेश्वरमें आश्रय लेते हैं। परमेश्वर ही सबके परम आश्रय हैं। स्थूल और सूक्ष्म पाँचों महाभूत, दसों इन्द्रियाँ और उनके विषय—रूप-रस आदि, चारों प्रकारके अन्तः-करण और इनके विषय और पाँच भेदोंवाला प्राण-वायु—सब-के-सब परमात्माके ही आश्रित हैं। स्थूल-पृथ्वी और उसका कारण गन्ध-तन्मात्रा, स्थूल जल-तत्त्व और उसका कारण रस-तन्मात्रा, स्थूल तेजतत्त्व और उसका कारण रूप-तन्मात्रा, स्थूल वायु-तत्त्व और उसका कारण स्पर्श-तन्मात्रा एवं स्थूल आकाश और उसका कारण शब्द-तन्मात्रा, पञ्चभूत, नेत्र-इन्द्रिय और उसके द्वारा देखी जाने वाली वस्तुएँ, श्रोत्र-इन्द्रिय और उसके द्वारा जो कुछ श्रवण होता है, घ्राणेन्द्रिय और उसके द्वारा सूँघे जानेवाले पदार्थ, रसना-इन्द्रिय और उसके द्वारा आस्वादनीय पदार्थ-समूह, त्वचा इन्द्रिय और उसके द्वारा स्पर्श किये जानेवाले पदार्थ-समूह, वाक् इन्द्रिय और उसके द्वारा बोले जानेवाले शब्द, दोनों हाथ और उनके द्वारा ग्रहण की जानेवाली वस्तुएँ, दोनों पैर और उनके गन्तव्य स्थान, उपस्थ-इन्द्रिय और उसके द्वारा किये जानेवाले कर्म (मैथुन आदि), गुदा-इन्द्रिय और उसके द्वारा त्यागा जानेवाला मल, मन और उसके द्वारा मनन किये जाने वाले विषय, बुद्धि और उसके द्वारा जाननेमें आनेवाले विषय, अहङ्कार और उसके विषय, चित्त और उसके द्वारा चिन्तनीय विषय, प्रभाव और उसके द्वारा प्रभावित विषय एवं पाँच वृत्तिवाला प्राण और उसके द्वारा जीवन देकर धारण किये जानेवाले सब शरीर—ये सब-के-सब परमेश्वरके आश्रित हैं। देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, सूँघनेवाला, स्वाद लेनेवाला, मनन करनेवाला, जाननेवाला तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों और मनके द्वारा समस्त कर्म करनेवाला यह विज्ञान स्वरूप पुरुष—जीवात्मा भी उन उन सर्वात्मा परमेश्वरका आश्रित है और उनमें ही स्थित है। जीवात्मा उन परब्रह्म परमेश्वरको प्राप्त होने पर ही शान्ति लाभ करता है। अतएव परमेश्वर ही जीवात्माके परम आश्रय हैं। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जो कोई भी मनुष्य उन छायारहित, प्राकृत शरीर-रहित, वर्णरहित, विशुद्ध, अविनाशी परमात्माको जान लेता है वह उसे अवश्य ही प्राप्त हो जाता है, वह सर्वज्ञ और सर्वरूप हो जाता है।

पंचम प्रश्न—

उसके पश्चात् सत्यकामने महर्षि पिप्पलादसे जिज्ञासा की—जो मनुष्य जीवनभर ओंकारकी भली-भाँति उपासना करता है, वह उस उपासनाके द्वारा किस लोकको प्राप्त करता है ?

महर्षि पिप्पलादने उत्तर दिया—ओंकारके दो स्वरूप हैं—परमेश्वर परब्रह्म-स्वरूप हैं और उनका बाह्य विराट् रूप ही—अपरब्रह्म है। केवल इसी एक ओंकारका जप, स्मरण और चिन्तन करने-वाला व्यक्ति अपने इष्टके अनुसार वस्तु प्राप्त कर लेता है। ओंकारका चिन्तन करनेवाला मनुष्य यदि विराट परमेश्वरके भुः, भुवः, स्वः—इन तीनों रूपोंमें से भूलोकके ऐश्वर्यमें आसक्त होकर उसकी प्राप्तिके लिये ओंकारकी एक मात्राकी उपासना करता है तो

वह पृथ्वी लोकमें जन्म ग्रहण करता है। ओंकारकी पहली मात्राका सम्बन्ध पृथ्वीलोकसे है; अतः उसके चिन्तनसे वह मनुष्य जन्ममें तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धासे सम्पन्न उत्तम आचरणोंवाला श्रेष्ठ मनुष्य बनकर उपयुक्त ऐश्वर्यका भोग करता है। मरनेके बाद भी पुनः मनुष्य जन्म प्राप्त होकर नाना प्रकारके सुखोंका भोग करता है।

यदि साधक दो मात्रावाले ओंकारकी उपासना करता है अर्थात् भुः और भुवलोकोंके ऐश्वर्यकी अभिलाषासे ओंकारकी उपसना करता है तो वह मनोमय चन्द्रलोकको प्राप्त होता है। वह स्वर्गलोकमें नानाप्रकारके ऐश्वर्यका भोग करता है और पुण्यफल क्षय हो जाने पर पुनः मृत्यु-लोकमें जन्म लेता है तथा पूर्व कर्मानुसार मनुष्य योनि अथवा किसी दूसरी योनिमें जन्म लेता है।

उपर्युक्त दोनों प्रकारकी उपासना अपर ब्रह्मकी उपासना है। इनके अतिरिक्त यदि कोई साधक ओंकार द्वार त्रिमात्रायुक्त पूर्णस्वरूप परब्रह्मकी उपासना करता है, तो वह कर्म-बन्धनसे छूटकर तेजोमय सूर्यमण्डलमेंसे होकर ब्रह्मलोकमें पहुँचनेमें समर्थ होता है, और परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त कर अमृतका अधिकारी होता है। ओंकारवाच्य परब्रह्म परमेश्वर का जगत्‌रूप विराट स्वरूप उनका अविनाशी-स्वरूप नहीं है। वह परिवर्तनशील है; अतः इसमें रहनेवाला जीव अमर नहीं हो सकता। वह चाहे ऊँचीसे ऊँची योनिको क्यों न प्राप्त कर ले, जन्म-मृत्युके चक्करसे नहीं छूटता। अतः जगत्-सम्बन्धी अभिलाषाओंवाला साधक पर-ब्रह्मपुरुषोत्तमको प्राप्त नहीं होता, बल्कि बार-बार जन्मता और मरता है। परन्तु जो साधक अपने शरीरके बाहर, भीतर और मध्यस्थान —हृदयमें एवं उसके द्वारा की जानेवाली समस्त क्रियाओंमें सर्वत्र ओंकारके वाच्यरूप एकमात्र परब्रह्म पुरुषोत्तमको व्याप्त समझता है और उनको ही प्राप्त करनेकी इच्छासे ओंकार द्वारा उनकी उपासना करता है, वह परब्रह्म प्राप्त होकर सुखी होजाता है और उस स्थितिसे कभी विचलित नहीं होता—शान्त, अजर, अमर और अभय होकर नित्यधाममें नित्यकाल स्थिर हो जाता है।

षष्ठ प्रश्न

अन्तमें भरद्वाजमुनिके पुत्र सुकेशाने जिज्ञासाकी —महर्षे! एक बार कोशलदेशका राजकुकार हिरण्यनाभ मेरे पास आया और पूछा—'क्या तुम सोलह कलाओंवाले पुरुषको जानते हो?' मैंने उसे साफ शब्दोंमें कह दिया—'भाई! मैं सच कहता हूँ—उसे मैं नहीं, जानता।' मेरे उत्तरको सुनकर राजकुमार चला गया। अब मैं उसी सोलह कलाओंसे युक्त पुरुषका तत्त्व आपसे जानना चाहता हूँ। कृपया आप मुझे उसका स्वरूप बतलाइये।

पिप्पलादने उत्तर दिया—जिन परमेश्वरसे सोलह कलाओंका समुदाय सम्पूर्ण जगत्‌रूप विराट शरीर उत्पन्न हुआ है, वे ही वह पुरुष हैं। उनको ढूढ़नेके लिये कही अन्यत्र नहीं जाना पड़ना, वे हमारे शरीरके भीतर हृदयमें ही वर्त्तमान हैं।

महासर्गके आदिमें परमपुरुष परमेश्वरने विचार किया कि—'मैं जिस ब्रह्माण्डकी रचना करना चाहता हूँ उसमें एक ऐसा कौन सा तत्त्व डाला जाय जिसके न रहने पर मैं स्वयं भी उसमें न रह सकूँ।' सबसे पहले उन्होंने प्राणकी सृष्टि की। उसके पश्चात् शुभकर्म प्रवृत्त करानेवाली श्रद्धाको प्रकट कर फिर क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, मन, इन्द्रिय, अन्न, अन्नसे वीर्य, और उसके पश्चात् तप, मन्त्र, कर्म, लोक-समूदाय और उन लोकोंके नमोंकी रचना की। जैसे भिन्न-भिन्न नामकी अनेक नदियाँ अपने उद्गम स्थान समुद्रकी ओर दौड़ती हुई समुद्रमें मिल जाती हैं, वहाँ नदीका अपना कोई पृथक नाम नहीं रहता, वे भी समुद्रकी भाँति हो जाती हैं, उसीप्रकार सर्वसाक्षी सर्वात्मा परमेश्वरसे उत्पन्न हुईं सोलह कलाएँ (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) प्रलयकालमें अपने परमाधार परमेश्वरमें अवस्थित हो जाती हैं। उस समय उनके अलग अलग नाम-रूप नहीं रहते। फिर तो परमात्माके नामसे ही उनका भी वर्णन होता है। परमात्मा सब कलाओंसे रहित, अमृतस्वरूप हैं।

इस तत्त्वको जान लेने पर मनुष्य भी परमब्रह्मको प्राप्त होकर अकल और अमर हो जाता है। जिस प्रकार रथके पहियेमें लगे रहनेवाले अरे उस पहियेके मध्यस्थ नाभिमें प्रविष्ट रहते हैं, उनका सबका आधार नाभि है, उसी प्रकार प्राण आदि सोलह कलाओंके जो आधार हैं, ये सब कलाएँ जिनके आश्रित हैं, जिससे उत्पन्न हैं और जिनमें स्थित हैं, वे ही जानने योग्य परमेश्वर हैं। उनको जान लेने पर मृत्युका डर नहीं रहता; फिर जन्म-मरणरूप संसारसे सदाके लिये छुटकरा मिल जाता है, सदाके लिये अमर हुआ जा सकता है।

इतना उपदेश करनेके पश्चात् महर्षि पिप्पलादने छहों ऋषियोंको सम्बोधन करते हुए कहा—मैं इस परमेश्वरके विषयमें जो कुछ जानता था, तुम लोगों को बतला दिया। इससे अधिक मुझे और कुछ कहना नहीं है। महर्षिकी बातको सुनकर उन छहों ऋषियोंने पिप्पलादकी पूजा की और सम्बर्द्धना करते हुए बोले—आप ही हमारे वास्तविक पिता हैं, क्योंकि आपने हमें इस संसारसे पार पहुँचा दिया। आपको नमस्कार है, बार-बार नमस्कार है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीप्रभुपादके अतिमर्त्य चरित्रकी कुछ झाँकियाँ

आधुनिक जगत्में शुद्ध भक्ति-प्रचारके मूल-स्रोत श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके श्रीजगन्नाथ पुरीमें निवासके समय एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उनकी सहधर्मिणी श्रीमती भगवती देवी उस समय प्रसव-वेदनाको भूल गयीं, जिस समय उन्होंने नवजात शिशुके शरीर पर स्वाभाविक यज्ञोपवीत और ललाट पर ऊर्द्धपुंड्र तिलक देखा। उन्होंने तुरन्त पतिदेवको बुलवाया। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर नवजात शिशुके शरीर पर इन लक्षणोंको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और आनन्दसे गद्गद् होकर बोले—'ये कोई महात्मा हैं। ऐसा जान पड़ता है, भगवानने उन्हें जगत्-कल्याणके लिये भेजा है। तिलक इस बातका संकेत कर रहा है कि ये शुद्ध-वैष्णव धर्मका प्रचार करेंगे और यज्ञोपवीत यह सूचित करता है कि ये शुद्ध-दैववर्णाश्रम-धर्मकी स्थापना करेंगे।' आगे चलकर यही बालक ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजके नामसे प्रसिद्ध हुआ, जिसने भारत और भारत के बाहर शुद्धभक्तिका विपुल-प्रचार किया तथा आधुनिक प्रचलित अदैव वर्णाश्रम व्यवस्थाको शास्त्र-बहिर्भूत एवं अयुक्ति संगत प्रमाणित कर दैव वर्णाश्रमकी स्थापना की है। अदैव वर्णाश्रममें वंशानुसार वर्ण निरूपित होता है; परन्तु शास्त्र-विहित दैववर्णाश्रममें पूर्व संस्कार द्वारा गठित स्वभाव, गुण और कर्मके आधार पर वर्ण निरूपित होता है।

× × × ×

श्रीगौरकिशोर दास बाबाजी महाराज व्रज-मण्डल और गौड़-मण्डलके माने हुए भक्त-सन्त थे। इनके तीव्र-वैराग्य और अप्रकृत कृष्णप्रेमकी तुलना विरल है। ये ही विश्व-विश्रुत गौड़ीय मठके प्रतिष्ठाता श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वतीके गुरुदेव हैं। व्रज-मण्डल या गौड़-मण्डल (नवद्वीप) में जहाँ भी रहते, लोग इनको बड़े आदर और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते। इनके अप्रकट होने पर इनके अप्राकृत शरीर के लिये बड़ा-विवाद उठ खड़ा हुआ। नवद्वीपके छोटे-बड़े सभी अखाड़ोंके महंथ इनके अप्रकृत शरीरकी समाधि स्वयं देना चाहते थे। इसका कारण यह था कि वे इन प्रसिद्ध बाबाजीकी समाधिसे (भेंट द्वारा) अर्थ व्यवसाय करनेका सुयोग ग्रहण करना चाहते थे। वाद-विवादने क्रमशः उग्र रूप धारण किया। आखीर पुलिस भी आयी। इसी बीच श्रीभक्ति

सिद्धान्त सरस्वती भी सूचना पाकर अपने कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए।

श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरको उपस्थित देखकर नवद्वीपके सभी अखाड़ोंके महंथ बाबाजी आपसमें मिल गये। कुछ देर तक वाद-विवाद होनेके पश्चात् बाबाजी-दलके लोगोंने कहा—'सरस्वती गोस्वामी संन्यासी नहीं हैं, अतएव उन्हें परमविरक्त संतकी समाधि देनेका अधिकार नहीं है।'

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने सिंहकी तरह गरजते हुए कहा— 'मैं परमहंस बाबाजी महाराजका एकमात्र शिष्य हूँ। मैं संन्यास नहीं लेने पर भी आकुमार ब्रह्मचारी हूँ। परमहंस बाबाजी महाराजकी कृपासे मैं उन लोगोंमें नहीं हूँ, जो त्यागी संतोंका बाना ग्रहण कर भी छिप-छिप कर व्यभिचार करते हैं। यदि आपलोगोंमें से कोई सच्चा-त्यागी हो, निर्मल चरित्रका हो, तो वह बाबाजी महाराजकी समाधि दे सकता है, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। अच्छी बात है, आपमेंसे कोई बाबाजी बाहर निकले, जो बाल-ब्रह्मचारी हों और बाबाजीके चिदानन्द शरीरका स्पर्श करें। मैं उन्हीं महात्माको समाधि देनेका अधिकारी मान लूँगा। परन्तु स्मरण रहे—व्यभिचारी या किसी प्रकारसे स्त्री-संग करनेवाला व्यक्ति इस चिदानन्द शरीरका स्पर्श करने से तत्क्षण जल कर भस्म हो जायेगा।'

सारी सभा निस्तब्ध हो गयी। किसीको भी आगे बढ़नेका साहस नहीं हुआ। ऐसा देखकर सरस्वती ठाकुरने पुनः उसी प्रकार वज्र-गंभीर वाणीमें कहा—'आकुमार ब्रह्मचारीकी बात छोड़िये, पिछले एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करने वाला भी कोई व्यक्ति आगे निकल कर उनके शरीरको स्पर्श करे।' सभा निस्तब्ध। सरस्वती ठाकुरने फिर कहा—'छः महीने तक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेवाला भी बाहर निकले।' सभी निस्तब्ध। इस प्रकार सरस्वती ठाकुरने क्रमशः तीन महीने, एक महीने और अंतमें पिछले तीन दिनोंतक ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले बाबाजीको भी ललकारा। परन्तु कोई भी बाबाजी महाराज के चिदानन्द शरीरको स्पर्श करने का साहस न कर सका। सारी उपस्थित जनता इस अद्भुत दृश्यको देख कर आश्चर्य चकित हो गयी। बाबाजी लोग मुँह छिपा-छिपाकर भागने लगे। अंतमें शहरके संभ्रान्त पुरुषों और पुलिसने श्रीसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरको समाधिका अधिकारी घोषित कर दिया। श्रीसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने गंगाके किनारे अच्छी जगह देख कर बाबाजीकी समाधि प्रदान की।

× × × ×

उन दिनों 'श्रीश्री प्रभुपाद' श्रीधाम मायापुरके व्रजपत्तनकी अपनी कुटीमें दरवाजा बन्द कर दिन-रात निरंतर हरिनाम करते थे। भादोंका महिना था। गंगामें भयंकर बाढ़ आयी हुई थी। चारों ओर केवल पानी ही पानी दिखलायी पड़ता था। बिना नौका ओंके कहीं भी आना-जाना संभव नहीं था। जन्माष्टमीके एक दिन पहलेकी बात है। प्रातःकाल भगवान-के नैवेद्यके लिये अनेक चेष्टा करने पर भी कहीं तनिक भी दूध नहीं मिल सका। अकस्मात प्रभुपादकी इच्छा हुई—'आज यदि थोड़ा सा दूध मिल जाता तो श्रीमन्महाप्रभुको भोग लगाता? परन्तु मनमें ऐसी बात आते-न-आते ही वे अपने मनको बड़ा ही धिक्कार देने लगे—'कल निर्जला उपवास है, तो क्या इसीलिये मेरे मनमें ऐसी दुर्बुद्धिका उदय हुआ है? यदि ऐसी बात है, तो मैंने भारी अन्यान्य किया है।'

दो पहरके समय अकस्मात् श्रीमन्महाप्रभुकी आविर्भाव स्थली योगपीठका पुजारी वहाँसे प्रचुर परिमाणमें भगवतप्रसाद लेकर प्रभुपादके निकट उपस्थित हुआ। प्रसादमें दुध-दही, खीर, मक्खन और दूधसे बनी हुई तरह-तरहकी स्वादिष्ट मिठाइयाँ थीं। प्रभुपादने इन चीजोंको देखकर विस्मित होकर कहा—'ये सब चीजें कहाँसे मिली?'

पुजारीने डरते-डरते उत्तर दिया—'आज सबेरे हरिनाथ चक्रवर्ती—स्थानीय जमींदार महोदयका भेजा हुआ ग्वाला इन सब चीजोंको लेकर आया था

और कहा था कि जमींदार महोदयने ठाकुरजीके भोगके लिये यह भेजा है।'

प्रभुपादकी आज्ञा थी कि किसीकी दी हुई कोई भी उत्तम वस्तु जो योगपीठमें भोगके लिये दी गयी हो, उसे उनके पास न लाया जाय। परन्तु उस दिन पुजारीने उनकी इस आज्ञाका उल्लंघन करके उन चीजोंको लाया था। ऐसा देखकर प्रभुपादकी आँखों-से आँसुओंकी झड़ी लग गयी। वे रोते-रोते बोले—'प्रभो! मैंने आपको बड़ा ही कष्ट दिया। आपने मेरे लिये दूसरे लोगोंके हृदयमें प्रेरणा प्रदान कर इन चीजों को यहाँ भेजवानेकी व्यवस्था की है।' इतना कहते कहते उनका गला रुद्ध हो आया। वे आगे कुछ न कह सके। उपस्थित भक्तजनोंकी आँखें भी डबडबा आयी।

× × ×

एक दूसरी घटना भी इसी प्रकार है। माघका महीना था। एक दिन अकस्मात प्रभुपादकी इच्छा श्रीमन्महाप्रभुजीको आम भोग देनेकी हुई। प्रभुपाद तुरन्त ही खेद करने लगे कि शायद मेरे अन्दर आम खाने इच्छा थी, इसीलिये मेरी ऐसी इच्छा हुई है। ऐसा सोच कर वे बड़े दुःखी हुए।

मायापुर शहरसे दूर पड़ता है। माघके महीनेमें आम नहीं मिलते। हाँ बड़े-बड़े शहरोंमें बड़ी मुश्किलसे दो एक आम पाये जा सकते हैं। प्रभुपादने अपने मनकी बात किसीसे न कही।

थोड़ी ही देरमें प्रभुपादके नामसे एक पार्सल मिला। जब उसे खोला गया तो उसमेंसे बड़े सुन्दर-सुन्दर आम निकले। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। श्रीश्रीप्रभुपादकी आँखें भर आयीं। वे रोते-रोते बोले—'प्रभो! मैंने फिर आपको कष्ट दिया। आपने इस असमयमें भी न जाने कहाँसे आम भेज दिया है।'

उसी समय पुजारीको आम दे दिये और उसे भोग लगानेके लिये कहा। भोग लगने पर आमका प्रसाद सबको बाँट दिया गया। उस दिनसे प्रभुपाद-जीने जीवन भर कभी भी आम नहीं खाये। इन आमोंके लिये प्रभुको कितना कष्ट करना पड़ा था। भक्त भगवानकी सेवा करते हैं। भगवानसे अपनी सेवा नहीं कराते—

आत्मेन्द्रिय प्रीतिवांछा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीतिइच्छा धरे प्रेम नाम॥

× × ×

श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके शुद्धभक्ति-प्रचारसे बंगालके धर्म-व्यवसायी स्मार्त्त और तथाकथित गोस्वामी-संतानको बड़ी ठेस पहुँची। उन सब लोगों ने मिलकर शुद्ध-वैष्णव आचार्योंके विचारोंके प्रति आक्रमण करना आरंभ किया। यहाँ तक कि उन लोगों ने वैष्णवों को शास्त्रार्थके लिये चुनौती दी। बालिघाई (बंगाल) नामक स्थान पर एक विराट सभाका आयोजन किया गया।

शास्त्रार्थकी सूचना ठाकुर भक्ति विनोदजीको दी गयी। ठाकुर उस समय बड़े अस्वस्थ्य थे। इसलिये वे बड़े दुःखित हुए। उन्होंने बड़े दुःखसे कहा—'वैष्णवधर्मकी इस विपत्तिके समयमें क्या कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो छः गोस्वामियों द्वारा प्रचारित एवं महाप्रभुद्वारा प्रकटित सिद्धान्तोंका स्थापन कर इन भक्तिविरुद्ध धर्मव्यवसायियोंके कुसिद्धान्तोंको चूर्ण-विचूर्ण कर सके?' श्रीसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने ठाकुर भक्तिविनोदके चरणोंमें गिर कर कहा—'यदि आप कृपा कर आदेश दें और शक्ति संचार करें तो आपका यह अयोग्य भृत्य बालक इस साधारण कार्यको आसानीसे पूरा कर सकता है।'

श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीकी बात सुनकर ठाकुर भक्ति विनोद बड़े प्रसन्न हुए और आशिष देते हुए बोले—'वैष्णव-धर्मके इस दुर्दिनमें तुम्हीं गौड़ीय वैष्णव-धर्मकी रक्षा करोगे। जाओ, तुम्हारी विजय होगी। तुम सदा-सर्वदा वैष्णव सिद्धान्तमें अजय होगे। समस्त बहिर्मुख विश्व

मिल कर भी तुम्हें निरपेक्ष सत्य कहने को रोक नहीं सकता। तुम्हारी समस्त बाधाएँ चूर्ण-विचूर्ण हो जायेंगी।'

हुआ भी ऐसा ही। बालिघाईमें विराट सभा हुई; एक तरफ प्रकांड-प्रकांड सैकड़ों स्मार्त्त पण्डित और दूसरी ओर दो चार वैष्णव पण्डित। परन्तु अल्पवयस्क श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीकी प्रखर प्रतिभा, अकाट्य शास्त्रीय युक्ति और प्रमाणके सामने विरुद्ध पक्षके पण्डितोंकी प्रतिभा क्षीण हो गयी। वे सिद्धान्त सरस्वतीके सामने एक शब्द भी न बोल सके। श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ने उक्त सभामें ब्राह्मण और वैष्णवोंके सम्बन्धमें जो तारतम्यमूलक विचार दिखलाया था, वह 'ब्राह्मण और वैष्णव' के नामसे प्रकाशित हुआ। इस विजय से श्रीमन्महाप्रभुका प्रचारित धर्म बंगालमें पुनः सजीव हो उठा।

× × ×

श्रीप्रभुपादके निरपेक्ष सत्यके प्रचारसे कुछ स्वार्थी लोग क्षुब्ध हो उठे थे। यह पहले ही बतलाया गया है। ये लोग प्राचीन कुलिया (वर्तमान नवद्वीप शहर) को श्रीमन्महाप्रभुजीका आविर्भाव स्थान बतलाते थे। परन्तु ठाकुर भक्तिविनोदने प्राचीन ग्रन्थों, प्राचीन नक्शों और विभिन्न प्रमाणों द्वारा श्रीचैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव स्थल गंगाके पूर्व तट पर स्थिर किया। वहीं जन्म स्थान पर बड़े-बड़े मंदिर बनाये गये तथा वहीं से श्रीचैतन्य महाप्रभुका प्रचारित धर्म भी विश्वके कोने-कोनेमें फैलने लगा। इससे कुछ स्वार्थी लोग हिंसा करने पर भी उतारू हो गये।

सन् १९२५ ई० की बात है। मार्चका महीना था। श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा हो रही थी। आगे-आगे हाथीके ऊपर श्रीराधागोविन्ददेव और उनके पीछे श्रील प्रभुपाद पैदल ही पधार रहे थे। उनके पीछे विराट कीर्त्तन मण्डली और सैकड़ों पद-यात्री। नवद्वीप शहरमें पोड़ामातला नामक स्थान में कुछ समय तक ठहर कर कीर्तन और स्थान-माहात्म्य वर्णनका कार्यक्रम चल रहा था, कि अकस्मात इन पर बड़े जोरोंसे आक्रमण कर दिया गया। पत्थर और ईंट बरसने लगे। अनेक यात्री घायल हो गये। भोले-भाले निहत्थे यात्री और संन्यासी जिधर-तिधर भागनेके लिये विवश थे। वहाँ के कुछ सज्जनोंने श्रील प्रभुपाद और दो एक उनके शिष्योंको अपने घरमें छिपा लिया और बाहर से दरवाजा बन्द कर दिया। आक्रमणकारी गुण्डे प्रभुपादको जानसे मार डालनेके लिये इधर-उधर ढूंढ़ने लगे।

इधर शाम होनेको आयी। इसी समय उनके परम प्रिय पार्षद श्रीविनोद ब्रह्मचारी (श्री गौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक और सभापति आचार्य ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज) ने अपना सफेद वस्त्र प्रभुपादको पहना कर वहाँ श्रीमायापुर भेज दिया और स्वयं प्रभुपादके वस्त्रोंको धारण कर श्रीप्रभुपादजीके वहाँ से बाहर न चले जाने तक उपस्थित रहे। श्रील प्रभुपादके मनोभिष्टपूरक तत्पार्षद ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीने अपनी इस आदर्श गुरु-सेवा द्वारा श्रीरामानुजके शिष्य कुरेशकी गुरुसेवाका द्वितीय आदर्श स्थापित किया है।

इतना अत्याचार होने पर भी श्रीप्रभुपादने आक्रमणकारियोंको क्षमा कर 'तरोरिव सहिष्णुना' का अतुलनीय आदर्श स्थापित किया।

श्रीचैतन्य महाप्रभु

[पूर्व प्रकाशित वर्ष ५, संख्या ८, पृष्ठ १७० से आगे]

त्यागी तुरन्त प्रभु ने वह पाठशाला।
गाते गुणी गजब के गुण ज्ञान माला॥
बीते दिवा असविधी मन मोद पाके।
बीती ऋतु शरद भी रस राग जाके॥४७॥

छाया समस्त जग में निशि सा अँधेरा।
मानो सधूम धुखा नभ जाय घेरा॥
कैधौं उठा भँवर सा भव में भभूरा।
धावा विलोक जिसमे तम तोम पूरा॥४८॥

कैधौं लगी तपन है बिन ताप-वारी।
कैधौं फटा हृदय है वसुधा-कुमारी॥
कैधों हिमन्त पति का इति काल पाया।
साध्वी सती शिशिर में दव-दाह-जाया॥४९॥

देखो दिनेश दिन में ससि सा सुहाता।
जाती रही तपन है, नर नारि-भाता॥
प्यारी प्रिया पद्मनी पति को न पाके।
रोती रही निरत ही ढिग कोकि जाके॥५०॥

"कोकी कहो कठिन कंत कहाँ गये हैं।
आली अनाथ करके कब लौं गये है॥
लाली अकाश उनकी अब ना दिखाती।
शोभा सखी सरद के ससि सी सुहाती"॥५१॥

पीली पड़ी पति विना निरता रुदन्ती।
नीकी लगे सबन को हँसनी हँसन्ती॥
जाले पड़े दृगन में मुख मध्य ताले।
काला पड़ा रुधिर है प्रिय-प्राण लाले॥५२॥

सोचा सदैव सबने शिशिरान्त आया।
बूड़े-बड़े बिबल ने विश्राम पाया॥
आशा बँधी हृदय में ऋतुराज आवै।
मानो बचे रजत पा, नर गीत गावै॥५३॥

निशीश नाथ नभ में नव सी प्रभा को।
छाये छिपा छिति छपा छनदा विभा को॥
तारे अखंड नभ मंडल सोहते थे।
मानो अनेक वायु में सुर जोहते थे॥५४॥

छाई सुशान्ति जग में सब सो रहे थे।
मानो अनंद-दधि माँहि डुबो रहे थे॥
खोके नितान्त सुधि को, मन बावले को।
आये निहार कर वे मनु साँवले को॥५५॥

कोई नहीं खटकती-तरु-पत्र-डाली।
कोई नहीं चहकती चिड़ियाँ निराली॥
जाते हुए डगर में अथ को दिखाता।
राका-पती गगन से यश को लुटाता॥५६॥

गौराङ्ग देव उस रात्रि समानुरागी।
आये निवास जन वास सुप्रेम पागी॥
हे कृष्ण! हे प्रिय-पती वृषभानुजा के।
गोविन्द गोप-बनिता-प्रिय-भानुजा के॥५७॥

गाते हुए इस विधी सब नाचते थे।
मानो गुविन्द सह सखा मिल नाचते थे॥
कैधौं अकाश शशि तारक सोहते थे।
यातो अनंग सबके मन मोहते थे॥५८॥

रोका अचानक निमाइ स्व-नृत्य को भी।
बोले "रुको सब सखा, लख गेह को भी।
ढूढ़ो तुरन्त पर है अपनाऽनुरागी।
बैठा हुआ अबसि है बनके विरागी॥५९॥

देखा दसों दिशि लगा न पता किसी का।
पाया प्रतीक न छिपा घर में उसी का॥
गोरांङ्ग देव चट ही सब भेद पाया।
पाई पड़ी खरल में, इक वृद्ध जाया॥६०॥

—श्री शंकरलाल चतुर्वेदी एम० ए०, साहित्यरत्न

जैव-धर्म

उनतीसवां अध्याय

रस-विचार

ब्रजनाथ और विजयकुमार दोनोंने सोच-विचार कर स्थिर किया कि वे पुरीमें ही चातुर्मास्यका समय बितायेंगे तथा श्रीगोपालगुरुके निकट रस-तत्त्व सम्बन्धी समस्त प्रकारके विचारोंका श्रवण करेंगे। ब्रजनाथकी पितामही भी चातुर्मास्यमें पुरीवासका माहात्म्य सुनकर दोनोंके प्रस्तावसे सहमत हो गयी। फिर तो वे प्रतिदिन सुबह और शामको श्रीजगन्नाथ-देवका दर्शन करते, नरेन्द्र सरोवरमें स्नान कर पुरी और आस-पासके दर्शनीय स्थानोंका नियमित रूपमें दर्शन करते। इसके अतिरिक्त श्रीजगन्नाथजीकी जिस समय जो सेवा होती तथा जिस समय जो वेश आदि होते उन सबका भक्तिपूर्वक दर्शन करते। इस प्रकार बड़े नियमितरूप तथा सुन्दर ढङ्गसे उनका समय बीतने लगा। उन्होंने श्रीगोपाल गुरुके समीप अपने मनके भावोंको व्यक्त किया। श्रीगुरु गोस्वामीजी उनकी बात सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। वे बोले—'मेरे हृदयमें तुम दोनोंके प्रति एक प्रकारसे वात्सल्य भाव इतना प्रगाढ़ हो चुका है कि मुझे तो ऐसा लगता है कि तुमलोगोंके यहाँसे चले जाने पर मुझे बड़ा ही कष्ट होगा। तुम लोग जितने ही दिन यहाँ अधिक रुकोगे—मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। सद्गुरु आसानीसे पाये जा सकते हैं, परन्तु सच्चे शिष्य आसानीसे नहीं पाये जाते।'

ब्रजनाथने बड़ा ही नम्र होकर पूछा—'कृपा कर भिन्न-भिन्न रसोंके विभाव आदिको बतलाकर रस-तत्त्वकी ऐसी व्याख्या करें जिससे हमलोग सहज ही समझ सकें।'

गोस्वामी—'बड़ा ही सुन्दर विषय है। श्रीगौर-सुन्दर मेरे मुखसे जो कुछ कहलायेंगे, मैं कहूँगा; तुम लोग सावधानीसे श्रवण करना। सबसे पहले शान्त रस आता है। शान्त-रसमें शान्ति रति ही स्थायीभाव है। निर्विशेष ब्रह्मानन्दमें तथा योगियोंके आत्मानन्दमें जो आनन्द है, वह अत्यन्त सीमित और शिथिल आनन्द है। ईशमय आनन्द इनसे कुछ बढ़ कर होता है। ईश-स्वरूपानुभव ही उस सुखका का कारण होता है। शान्तरसके आलम्बन चतुर्भुज नारायण-मूर्त्ति हैं। उस मूर्त्तिमें विभुता, ऐश्वर्य आदि गुण होते हैं। शान्त पुरुष ही शान्तरतिके आश्रय होते हैं। आत्मारामगण तथा भगवानके विषयमें श्रद्धालु तपस्वीजन ही शान्त पुरुष हैं। सनक, सनन्दन, सनातन आदि चारों कुमार प्रधान आत्मा-राम हैं। ये लोग बाल-संन्यासीके वेशमें विचरण करते हैं। पहले-पहल इनकी रुचि निर्विशेष ब्रह्मके प्रति थी। परन्तु पीछेसे भगवानकी रूपमाधुरीके प्रति आकृष्ट होने पर ये चिद्घन मूर्त्तिकी उपासना करने लगे हैं। युक्त वैराग्य द्वारा सारे विघ्न दूर हो चुके हैं, विषयासक्ति भी दूर हो चुकी है; परन्तु मुक्तिकी अभिलाषा विद्यमान है, ऐसे तापस जन शान्त रसमें प्रवेश करते हैं। प्रधान-प्रधान उपनिषदोंका श्रवण, निर्जनमें वास, तत्त्वोंका विवेचन, विद्याशक्तिकी प्रधानता स्थापन, विश्वरूपके प्रति आदर, ज्ञानमिश्र भक्तोंका संग, समानके विद्वानोंके साथ उपनिषद्के विचारों पर विचार करना—यह सब इस रसका उद्दीपन है। पुनः भगवानके चरणकमलोंमें अर्पित तुलसीका सौरभ, शङ्ख-ध्वनि, पवित्र-पर्वत, पवित्र वन, सिद्ध क्षेत्र, गङ्गा, विषय क्षय होनेकी प्रवृत्ति अर्थात्

पाप दूर करनेकी अभिलाषा, काल ही सबका विनाश करता है—ऐसी धारणा ये भी उद्दीपन हैं। यह शान्त रसका विभाव है।'

व्रजनाथ—'इस रसका अनुभाव कैसा होता है ?'

गोस्वामी—'नासिकाके अग्रभाग पर दृष्टि, अवधूत की तरह चेष्टा, चार हाथ आगेका स्थान देख कर कदम उठाना, ज्ञानमुद्रा दिखलाना अर्थात् तर्जनी और अगूँठेको मिलाकर जो मुद्रा होती है, उसे दिखलाना, भगवद्विद्वेषीके प्रति द्वेषरहित होना, भगवानके प्रेमी भक्तोंके प्रति भक्तिकी कमी, संसार-ध्वंस और जीवन्मुक्तिके प्रति आदरका भाव, निरपेक्षता, निर्ममता (ममताका न होना), निरहंकार और मौन आदि शीतारतिकी असाधारण क्रियाएँ —ये शान्त रसके अनुभाव हैं। जृंभा (जंभाई आना), अंगोंका टूटना, भक्ति-उपदेश, हरिके प्रति नमस्कार और स्तव आदि शीत-भावरूप साधारण क्रियाएँ हैं।

व्रजनाथ—'शान्त रसमें सात्विक विकार कैसा होता है ?'

गोस्वामी—'प्रलय अर्थात् मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरनेके अतिरिक्त रोमांच, स्वेद स्तम्भ आदि सात्त्विक विकार-समूह इस रसमें अधिक परिमाणमें लक्षित होते हैं। इसमें दीप्त-लक्षण सात्त्विक विकार नहीं होते।'

व्रजनाथ—'इस रसमें संचारी भाव कौन-कौन हैं ?'

गोस्वामी—'निर्वेद (खेद, वैराग्य,) धैर्य, हर्ष, मति, स्मृति, विषाद, उत्कंठा, आवेग और वितर्क—ये संचारी भावसमूह साधारणतः शान्त रसमें देखे जाते हैं।'

व्रजनाथ—'शान्ति रति कितने प्रकारकी होती है ?'

गोस्वामी—'शान्त रसमें शान्ति-रति स्थायी भाव है। शान्ति रति समा और सान्द्रा भेदसे दो प्रकारकी होती है। असंप्रज्ञात समाधि ❀ में भगवत्स्फूर्तिजन्य शरीरमें हर्ष, काम, रोमांच प्रकाशित होने पर समा शान्ति रति होती है। सम्पूर्णरूपसे अविद्या ध्वंसके हेतु निर्विकल्प समाधिमें भगवत् साक्षात्कार होने पर जो अत्यन्त घनानन्द होता है उसे सान्द्रानन्द कहते हैं; सान्द्रा शान्तिरतिमें यही सान्द्रानन्द प्रकाशित होता है। पारोक्ष और साक्षात्कार भेदसे शान्त रस दो प्रकारका होता है। शुकदेव और बिल्वमंगलने ज्ञान द्वारा पाये जानेवाले ब्रह्मानन्दका परित्याग कर भक्तिरस आनन्दसमुद्रमें गोता लगाया था। प्रख्यात विद्वान् श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी भी यही अवस्था हुई थी।

व्रजनाथ—'जड़ अलंकारमें शान्तरसको क्यों नहीं ग्रहण किया गया है ?'

गोस्वामी—'जड़ीय व्यापारमें शान्ति आनेसे ही विचित्रता दूर हो जाती है, इसलिये जड़ अलंकारिकों ने शान्त रतिको नहीं लिया है। परन्तु चिद्व्यापार में शान्ति रसके आविर्भावसे अप्राकृत रसका उत्तरोत्तर उदय होता है। भगवान्ने बतलाया है कि उनमें (भगवानमें) निष्ठायुक्त बुद्धिको 'शम' कहते हैं। अब देखो, शान्ति-रतिके बिना भगवानमें बुद्धिकी निष्ठाका होना असंभव है; अतएव चित्-तत्त्वमें शान्त रसको अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा।'

व्रजनाथ—'शान्त भक्तिरसको भलीभाँति समझ गया। अब कृपया दास्य रसकी विभाव आदि के साथ व्याख्या कीजिये।'

गोस्वामी—'दास्य रसको पण्डितजन प्रीत रस कहते हैं। अनुग्रहपात्र दास भावयुक्त तथा पाल्य भावयुक्त दो प्रकार होनेके कारण यह प्रीत रस भी दो प्रकारका होता है—सम्भ्रमप्रीतरस और गौरव प्रीत रस।'

व्रजनाथ—'संभ्रम प्रीत रस किसे कहते हैं ?'

गोस्वामी—'मैं कृष्णका दास हूँ'—ऐसे अभिमान वाले व्यक्तियोंका व्रजेन्द्रनन्दन कृष्णके प्रति संभ्रम-प्रीति उत्पन्न होती है। वही प्रीति उत्तरोत्तर

❀ योगमेंवह समाधि जिसमें आत्मा अपने स्वरूपके बोध तक न पहुँची हो।

अधिक पुष्ट होने पर 'संभ्रम प्रीत' कहलाता है। इस रस में कृष्ण और कृष्णदासगण आलम्बन होते हैं।'

ब्रजनाथ—'इस रसमें कृष्णका स्वरूप क्या होता है ?'

गोस्वामी—'गोकुलमें संभ्रम-प्रीत रसमें कृष्ण द्विभुजके रूपमें आलम्बन होते हैं। दूसरी जगह कहीं-कहीं पर द्विभुज और कहीं-कहीं पर चतुर्भुज रूपमें भी आलम्बन होते हैं। गोकुलमें नवजलधरकान्ति-युक्त प्रभु श्रीकृष्ण करयुगलोंमें मुरली, कटि प्रदेशमें स्वर्णको भी मात करनेवाला पीतवसन, सिर पर मयूर-पूच्छका चूड़ा धारणकर गोपवेशमें आलम्बन हैं। अन्यत्र द्विभुज होने पर भी हाथोंमें शंख-चक्र और समस्त अंगोंमें मणि-मुक्ताओंके आभूषण धारणकर ऐश्वर्य वेशमें आलम्बन होते हैं। श्रीरूप गोस्वामी भक्तिरसामृत-सिन्धु प० २ ल० ३ में लिखते हैं—

ब्रह्माण्डकोटि धामैकरोमकूपः कृपाम्बुधिः।
अचिन्त्य महाशक्तिः सर्वसिद्धिनिषेवितः॥
अवतारावलीबीजं सदात्मारामहृद्गुणः।
ईश्वरः परमाराध्यः सर्वज्ञः सुदृढव्रतः॥
समृद्धिमान् क्षमाशीलः शरणागतपालकः।
दक्षिणः सत्यवचनो दक्षः सर्वशुभंकरः॥
प्रतापी धार्मिकः शास्त्रचक्षुर्भक्तसुहृत्तमः।
वदान्यस्तेजसायुक्तः कृतज्ञः कीर्तिसंश्रयः॥
वरीयान बलवान् प्रेमवश्य इत्यादिभिर्गुणैः।
युतश्चतुर्विधेष्वेष दासेष्वालम्बनो हरिः॥ (क)

ब्रजनाथ—'चार प्रकारके दास कौन कौन हैं ?'

गोस्वामी—'प्रश्रित (सदा नीची दृष्टिवाले दास) आज्ञाकारी, विश्वासी और कृष्णको प्रभु जान करके नम्रबुद्धिसे युक्त—ये चार प्रकारके दास दास्य रतिके आश्रय रूप आलम्बन हैं। उनके तात्त्विक नाम ये हैं—(१) अधिकृत दास, (२) आश्रित दास, (३) पारिषद दास और (४) अनुगत दास'।

ब्रजनाथ—'अधिकृत दास कौन हैं ?'

गोस्वामी—'ब्रह्मा, शिव और इन्द्र आदि देव-देवियाँ अधिकृत दासदासी हैं; ये जगत् सम्बन्धी कार्योंमें अधिकार प्राप्त कर भगवान की सेवा करते हैं।'

ब्रजनाथ—'आश्रित दास कौन हैं ?'

गोस्वामी—'शरणागत, ज्ञानी और सेवानिष्ठ—ये तीन प्रकारके आश्रित दास हैं। कालियनाग, जरासंध द्वारा कारागारमें बन्द नृप-समूह शरणागत दासकी श्रेणीमें हैं। शौनक आदि ऋषिगण मुक्तिकी अभिलाषा छोड़ कर श्रीहरिका आश्रय करनेके कारण ज्ञाननिष्ठ दास हैं। प्रारंभसे ही भगवद्भजनमें आसक्त चन्द्रध्वज, हरिहर, बाहुलाश्व, इक्ष्वाकु और पुण्डरीक आदि सेवानिष्ठ शरणागत दास हैं।'

ब्रजनाथ—'पारिषद कौन हैं ?'

गोस्वामी—'उद्धव, दारुक, सात्यकि, श्रुतदेव, शतजित, नन्द, उपनन्द, भद्र—ये पारिषद दास हैं। ये लोग मंत्रणा आदि कार्योंमें नियुक्त रह कर भी समयानुसार परिचर्या करते हैं। भीष्म, परीक्षित्, विदुर भी परिषद् हैं; इनमें प्रेमीदास उद्धव ही श्रेष्ठ हैं।'

(क) जिनके एक-एक लोमकूपमें करोड़ों ब्रह्माण्ड स्थित हैं, जो करुणाके समुद्र हैं, जिनकी महाशक्तियोंको समझना जीवकी क्षुद्र बुद्धिसे बाहरकी बात है अर्थात् जो अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न हैं, जो सर्वप्रकारकी सिद्धियों द्वारा परिसेवित गुणावतार, लीलावतार एवं शक्त्यावेशावतार आदि अवतारोंके मूल कारण हैं, जो (शुकदेव आदि जैसे) आत्माराम योगियोंके मनको हरण करनेवाले हैं, जो सबके नियन्ता हैं, समस्त जीवों और देवताओंके भी परमाराध्य हैं, सर्वज्ञ हैं, सुदृढव्रत हैं, समृद्धिमान् हैं, क्षमाशील हैं, शरणागतजनोंके रक्षक हैं, परम उदार हैं, सत्यवचन हैं; दक्ष हैं, सबका कल्याण करनेवाले हैं, प्रतापशाली और धार्मिक हैं, जो शास्त्रचक्षु हैं, भक्तजनोंके परमबन्धु हैं, वदान्य, तेजोयुक्त और कृतज्ञ हैं, कीर्तिमान हैं, वरीयान हैं, बलवान हैं, एवं प्रेमवश्य हैं इत्यादि गुणोंसे युक्त हरि (कृष्ण) चार प्रकारके दास भक्तोंके आलम्बन स्वरूप हैं।

ब्रजनाथ—'अनुगतदास कौन हैं ?'

गोस्वामी—'सदा-सर्वदा सेवा-कार्यमें आसक्त चित्तवाले दास अनुगतदास कहलाते हैं,—ये दो प्रकार के होते हैं—एक ब्रजमें रहनेवाले, दूसरे द्वारकापुरीमें रहनेवाले। सुचन्द्र, मण्डल, स्तम्भ, सुतम्ब आदि द्वारकापुरीके अनुगतदास हैं। रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकण्ठ, मधुव्रत, रसाल, सुविलास, प्रेमकन्द, मकरन्दक, आनन्द, चन्द्रहास, पायोद, बकुल, रसद और शारद—ये ब्रजके अनुगतदासों में रक्तक सबसे प्रधान हैं। धूर्य, धीर, और वीर भेदसे पारिषद् दास तीन प्रकारके होते हैं। जो भक्त कृष्णके प्रति, कृष्णप्रेयसियोंके प्रति तथा कृष्णके सेवकोंके प्रति यथायोग्य प्रीति रखते हैं, वे धूर्य परिषद हैं; जो कृष्ण-प्रेयसी (सत्यभामादि) को आश्रय किये होते हैं, कृष्णकी सेवामें विशेषरूपसे नियुक्त नहीं होते, वे धीर परिषद् है तथा जो भक्त केवल मात्र कृष्णकी कृपाके आश्रित होते, दूसरोंकी परवा नहीं करते, उनको वीर पार्षद कहते हैं। श्रीकृष्णके पूर्वोक्त शरणागत, ज्ञाननिष्ठ और सेवानिष्ठ तीनों आश्रित दासगण नित्यसिद्ध, सिद्ध और साधक भेद से तीन प्रकारके होते हैं।'

ब्रजनाथ—'दास्य रसके उद्दीपन बतलाने की कृपा करें।'

गोस्वामी—'मुरलीध्वनि, शृंगध्वनि, सहास्यदृष्टि, गुण-श्रवण, कमल, पदचिह्न, नवीन मेघ और अंगों से निकला हुआ सौरभ—ये दास्यरसमें उद्दीपन हैं।'

ब्रजनाथ—'इस रसके अनुभाव कौन कौन से हैं ?

गोस्वामी—'अपने निर्दिष्ट कार्यमें पूरी तरह से लग जाना, भगवानकी आज्ञाका पालन करना, भगवान की सेवामें ईर्ष्या-द्वेषसे रहित रहना, कृष्णदासोंसे मित्रता और कृष्णके प्रति निष्ठा—ये दास्यरसके असाधारण अनुभाव हैं। नृत्य आदि उद्भास्वर, कृष्णके प्रियजनोंके प्रति आदर और अन्यत्र वैराग्य—ये साधारण अनुभाव हैं।'

ब्रजनाथ—'प्रीतरस आदि तीनों रसोंमें सात्त्विक विकार किस प्रकार होते हैं ?'

गोस्वामी—'इस रसमें स्तम्भ आदि सभी सात्त्विक भाव प्रकाशित होते हैं।'

ब्रजनाथ—'इस रसमें व्यभिचारी भाव कौन-कौन हैं ?'

गोस्वामी—'हर्ष, गर्व, धैर्य, निर्वेद, विषाद, दैन्य, चिन्ता, स्मृति, शंका, मति, उत्सुकता, चापल्य, वितर्क आवेग, लज्जा, जड़ता, मोह, उन्माद, हिचकी, बोध, स्वप्न, कलम, व्याधि, एवं मृति—ये २४ व्यभिचारी भाव इस रसमें हैं। मद, श्रम, भय, अपस्मार (मूर्छित होकर गिर पड़ना), आलस्य, उग्रता, क्रोध, असुया (द्वेष) और निद्रा—इनका प्रकाश अधिक नहीं होता। संयोग होने पर हर्ष, गर्व और धैर्य तथा वियोगमें ग्लानि, व्याधि और मृति भाव प्रकाशित होते हैं। निर्वेद आदि अठारह भाव संयोग और वियोग दोनों ही दशाओंमें दिखलायी पड़ते हैं।'

ब्रजनाथ—'इस प्रीत रससे स्थायी भाव जानना चाहता हूँ।'

गोस्वामी—'संभ्रम और प्रभुबुद्धिसे चित्तमें कम्प और आदरके साथ जो प्रीति मिल कर एकीभावको प्राप्त होती है, वही प्रीति इस रसका स्थायीभाव है। शान्त रसमें रतिमात्र ही स्थायी भाव हैं। इस रसमें रति ममतायुक्त भावसे प्रीति होकर स्थायी भाव होती है। यह संभ्रम प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ कर प्रेम, स्नेह और रागावस्था तक विस्तृत हो जाती है। संभ्रम प्रीति शङ्का और भयसे रहित होने पर प्रेमका रूप धारण करती है। जब प्रेम गाढ़े रूपमें चित्तद्रवताको उत्पन्न करता है तब वह स्नेहके नामसे परिचित होता है। स्नेहमें क्षणभरका वियोग भी असहनीय होता है। जब स्नेहमें दुःख भी सुख जान पड़ने लगता है, तब उस स्नेहको राग कहते हैं। ऐसी दशामें कृष्णके वियोगमें प्राणोंको छोड़ देनेकी इच्छा होती है। अधिकृत और आश्रित दास प्रेम तक प्राप्त करते हैं। आगे नहीं बढ़ते।

पारिषदोंमें स्नेह तक पाया जाता है। परीक्षित, दारुक, उद्धव और व्रजके अनुगत दासोंमें राग तक उदय होता है। राग उदित होने पर सख्य भाव आंशिक रूपमें उदय होता है। पण्डितजन इस रसमें कृष्णके साथ मिलनको योग और विच्छेदको अयोग कहते हैं। अयोग दो प्रकारका होता है—उत्कण्ठित और वियोग। योग तीन प्रकारका होता है—सिद्धि, तुष्टि और स्थिति। उत्कण्ठित दशामें कृष्णको देख पानेका नाम सिद्धि है, विच्छेदके पश्चात् कृष्ण-मिलनको तुष्टि कहते हैं। कृष्णके साथ निवास करनेको स्थिति कहते हैं।'

व्रजनाथ—'संभ्रम प्रीति समझ गया, अब गौरव प्रीतिकी व्याख्या कीजिये।

गोस्वामी—'जिनका लाल्य अभिमान होता है अर्थात् कृष्ण मेरा लालन-पालन करनेवाले हैं—ऐसा जिसको अभिमान होता है, उनकी प्रीति गौरवमयी होती है। वही प्रीति विभाव आदि द्वारा पुष्ट होने पर गौरव प्रीति होती है। भगवान् श्रीकृष्ण और उनके लाल्य दासगण इस रसके आलम्बन हैं। गौरव प्रीतिमें महागुरु, महाकीर्त्ति, महाबुद्धि, महाबल, रक्षक और लालकके रूपमें श्रीकृष्ण विषय रूप आलम्बन हैं। लाल्यगण कनिष्ठत्व और पुत्रत्व अभिमानके भेदसे दो प्रकारके होते हैं। सारण, गद और सुभद्र आदि कनिष्ठत्व अभिमान वाले हैं। प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और साम्ब आदि पुत्रत्व अभिमान वाले हैं। श्रीकृष्णका वात्सल्य और ईशत् हास्य (स्मितहास्य) आदि इस रसमें उद्दीपन हैं। लाल्य-गणका नीचे आसन पर बैठना, पूजनीयजनोंके मार्ग पर चलना, स्वेच्छाचारका परित्याग, ये सब अनुभाव हैं। संचारी और व्यभिचारी भावोंको पहलेकी भाँति ही जानना।'

व्रजनाथ—'गौरव शब्दका तात्पर्य क्या है?'

गोस्वामी—'शरीरके सम्बन्धसे कृष्ण मेरे पिता हैं, गुरु हैं—ऐसी बुद्धिको गौरव कहते हैं। लालन-पालन करने वाले कृष्णके प्रति तन्मयी प्रीतिको गौरव-प्रीति कहते हैं। यही इस रसका स्थायी भाव है।'

व्रजनाथ—'प्रभो! प्रीति रस समझ गया, अब प्रेय भक्तिरस या सख्य रसका वर्णन कीजिये।'

गोस्वामी—'इस रसमें कृष्ण और कृष्णके वयस्क सखा ही आलम्बन हैं। द्विभुज मुरलीधर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण विषय आलम्बन हैं और सखा आश्रय आलम्बन हैं।'

व्रजनाथ—'कृष्णके वयस्कों (सखाओं) का लक्षण और भेद जानना चाहता हूँ।'

गोस्वामी—'वयस्कोंके रूप, गुण और वेश दासों जैसा ही होते हैं; परन्तु ये लोग दासोंकी तरह संभ्रम भाव युक्त नहीं होते, इनमें विश्रंभ भाव होता है। ये पुर और व्रजसम्बन्धके भेदसे दो प्रकारके होते हैं। अर्जुन, भीम, द्रौपदी, श्रीदाम विप्र—ये पुर-सम्बन्धी सखा हैं। इनमें अर्जुन श्रेष्ठ हैं। व्रजवासी सखागण सर्वदा कृष्णके साथ रहना चाहते हैं, सर्वदा कृष्ण-दर्शनकी उनको लालसाबनी रहती है तथा कृष्ण ही उनके जीवन या प्राण है। अतएव ये ही प्रधान सखा हैं। व्रजके सखा चार प्रकारके होते हैं—(१) सुहृद्, सखा, प्रियसखा और प्रियनर्म सखा। सुहृद् सखामें कुछ-कुछ वात्सल्यका भाव मिला हुआ होता है। ये सखागण उमरमें कृष्णसे कुछ बड़े होते हैं; ये लोग अस्त्र धारण कर दुष्टोंसे कृष्णकी सर्वदा सर्वदा रक्षा करते हैं। सुभद्र, मण्डलीभद्र, भद्रवर्द्धन, गोभट, यक्ष, इन्द्रभट, भद्राङ्ग, वीरभद्र, महागुण, विजय और बलभद्र-ये सुहृद् सखा हैं। इनमें मण्डलीभद्र और बलभद्र सर्वप्रधान हैं। आयुमें कृष्णसे छोटे, कुछ-कुछ दास्यभावसे युक्त सख्यरस शाली वयस्योंको सखा कहते हैं। विशाल, वृषभ, ओजस्वी, देवप्रस्थ, वरूथप, मरन्द, कुसुमापीड़, मणिबद्ध, करन्धम—ये सखा हैं; इनमें देवप्रस्थ सर्व-प्रधान हैं। आयुमें समान और केवल सख्यभाववाले श्रीदाम, सुदाम, दाम, वसुदाम, किंकिनी, स्तोककृष्ण अंशु, भद्रसेन, विलासी, पुण्डरीक, विटङ्क, कलविङ्क आदि कृष्णके प्रिय सखा हैं। सुहृत्, सखा और प्रिय सखा इन तीनोंसे श्रेष्ठ अत्यन्त रहस्यपूर्ण कार्यों-

में निपुण सुबल, अर्जुन, गन्धर्व, वसन्त और उज्ज्वल आदि श्रीकृष्णके प्रिय नर्मसखा हैं । उज्ज्वल सर्वदा नर्मोक्ति (परिहासपूर्ण बातें) किया करते हैं । सखाओंमेंसे कोई-कोई नित्यप्रिय होते हैं, कोई-कोई देवता और कोई-कोई साधक होते हैं । ये लोग सख्य सेवामें नाना प्रकारकी भाव-भंगिमा आदि द्वारा विचित्रता सम्पादन कर कृष्णको प्रसन्न करते हैं ।'

ब्रजनाथ—'इस रसमें उद्दीपन क्या हैं ?'

गोस्वामी—कृष्णवयस, रूप, शृंग, वेणु, शंख, विनोद, परिहास, पराक्रम और लीला-चेष्टाएँ—ये सब सख्य रसके उद्दीपन हैं। गोष्ठमें कुमार और गोकुलमें कैशोर उद्दीपन हैं।

ब्रजनाथ—'साधारण सखाओंके अनुभावोंको जानना चाहता हूँ ।'

गोस्वामी—'बाहु-युद्ध, गेन्द खेल, एक दूसरेके कन्धे पर चढ़नेका खेल, लाठी खेला, पर्यङ्क, आसन और झूला, शयन, उपवेशन और परिहास, जल-विहार, बन्दरोंके साथ खेलना, कृष्णको प्रसन्न करने की चेष्टा, नृत्य, गान—ये सब साधारण सखाओंके अनुभाव हैं। सदुपदेश और सभी कार्योंमें अग्रसर होना सुहृदोंके कार्य हैं। ताम्बुल अर्पण, तिलक रचना तथा चन्दनलेपन आदि सखाओंके विशेष कार्य हैं। युद्धमें पराजय करना, छीना-झपटी, कृष्णद्वारा अलंकृत होना, प्रिय सखाओंके विशेष कार्य हैं। मधुरलीलामें सहायता करना प्रियनर्म सखाओंके विशेष कार्य हैं। ये दासकी भाँति बनके पुष्पोंसे कृष्णको सजाते हैं। कृष्णको पंखा आदि भी झलते हैं ।'

ब्रजनाथ—'इस रसमें सात्त्विक और संचारी भावोंका विचार क्या है ?'

गोस्वामी—'दास्य रस जैसा ही होता है, कुछ अधिकरूप में ।'

ब्रजनाथ—'इस रसमें स्थायीभाव कैसा होता है ?'

गोस्वामी—'श्रीरूपगोस्वामीने भक्तिरसामृत-सिन्धुमें लिखा है—

विमुक्तसंभ्रमा या स्याद्विश्रंभात्मा रतिर्द्वयोः ।
प्रायः समानयोरत्र सा सख्यं स्थायिशब्दभाक् ॥

अर्थात् साधारणतः समान-समान दो व्यक्तियों में परस्पर जो संभ्रमरहित विश्रंभात्मक रति होती है, उसे सख्य कहते हैं—यही 'स्थायी' शब्द वाच्य है।

ब्रजनाथ—'विश्रंभ किसे कहते हैं ?'

गोस्वामी—'विश्रंभो गाढ़विश्वास विशेषो मंत्र-णोज्झितः ।' अर्थात् सर्व प्रकारसे परस्पर अभेद प्रतीतिरूप गाढ़े विश्वासका नाम विश्रंभ है।

ब्रजनाथ—'कृपया इसके क्रम-विकाशके सम्बन्ध में बतलाईये ।'

गोस्वामी—'यह सख्यरस रति, प्रणय, प्रेम, स्नेह और राग तक पहुँच जाता है।

ब्रजनाथ—'प्रणयका लक्षण क्या है ?'

गोस्वामी—'संभ्रमकी योग्यता विद्यमान रहने पर भी संभ्रमगन्धशून्य रतिको ही 'प्रणय' कहते हैं। सख्य रस बड़ा ही अपूर्व होता है। प्रीत और वत्सल रसमें कृष्ण एवं कृष्ण-भक्तके भाव एक दूसरेसे भिन्न-जातीय होते हैं। सभी रसोंमें प्रेय रस अर्थात् सख्य रस ही प्रिय है, क्योंकि कृष्ण और कृष्णभक्तों का सम-जातीय माधुर्य भाव इसी रसमें लक्षित होता है।

तीसवां अध्याय

रस-विचार

विजय और ब्रजनाथ एक दिन भगवत्-प्रसाद पाकर श्रीहरिदास ठाकुरकी समाधिका दर्शन किये। पश्चात् श्रीगोपीनाथ टोटामें श्रीगोपीनाथजीका दर्शन कर श्रीराधाकान्त मठमें उपस्थित होकर श्रीगुरु गोस्वामीके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम कर बैठे। श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामीके साथ उनकी नाना प्रकारकी बातें होने लगीं। इसी बीच श्रीगुरुगोस्वामी प्रसाद-सेवा कर अपनी गद्दी पर पधारे। ब्रजनाथने बड़ी ही नम्रतापूर्वक वत्सल-भक्तिरसके सम्बन्धमें पूछा। श्रीगुरुगोस्वामी उत्तरमें बतलाने लगे।

वत्सल (वात्सल्य) रसमें श्रीकृष्ण विषय-आलम्बन हैं तथा उनके गुरुजन आश्रय-आलम्बन हैं। कृष्ण-सुन्दर, श्यामांग, सर्वसुलक्षणोंसे युक्त मृदु, मधुरभाषी, सरल लज्जावान, विनयी, गुरुजनों का मान करनेवाले और दाता हैं। ब्रजेश्वरी यशोदा, ब्रजेश्वर नन्द महाराज, रोहिणी, पूजनीया गोपियाँ, देवकी, कुन्ती, वसुदेव, सान्दीपनी आदि गुरुजनोंमें नन्द और यशोदा सर्वप्रधान हैं। इस रसमें कौमार आदि वयःकाल, रूप, वेश, शैशव, चापल्य, जल्पना, हास्य और लीला आदि उद्दीपन हैं।'

ब्रजनाथ—'इस रसके अनुभावोंको बतलाइये।'

गोस्वामी—'सिरको सूँघना, हाथोंसे अंगोंको मार्जन करना, आशिर्वाद, आज्ञा देना, लालन-पालन करना, हितोपदेश देना—ये सब अनुभाव हैं। चुम्बन, आलिंगन, नाम लेकर पुकारना, उपयुक्त समय पर डाँटना-डपटना—ये सब इस रसकी साधारण बातें है।'

ब्रजनाथ—'इस रसमें कौन-कौनसे सात्त्विक विकार उत्पन्न होते हैं?'

गोस्वामी—'अश्रु, कम्प, स्वेद, स्तंभ आदि आठ और स्तनसे दूध झरना कुल मिलाकर नौ सात्त्विक विकार इस रसमें होते हैं।'

ब्रजनाथ—'व्यभिचारी भावोंको भी बतलानेकी कृपा करें।'

गोस्वामी—'वत्सल रसमें एवं प्रीत रसमें बतलाये गये समस्त व्यभिचारी भाव तथा अपस्मार (मूर्च्छा) प्रकाशित होते हैं।'

ब्रजनाथ—'इस रसमें स्थायी भाव कैसा होता है?'

गोस्वामी—'अनुकम्पाकारीका अनुकम्पाके पात्र-के प्रति जो संभ्रमशून्य रति होती है, वही इसमें स्थायी भाव है। यशोदा आदिकी वात्सल्य रति स्वभावतः प्रौढ़ा है। प्रेम, स्नेह और राग तक इस रसके स्थायी भावकी गति होती है। बलदेवका भाव प्रीति और वात्सल्य मिश्र है। युधिष्ठिरका भाव वात्सल्य, प्रीति और सख्यताका सम्मिश्रण है। उग्र-सेनकी प्रीति वात्सल्य और सख्य रस मिश्रित है। नकुल, सहदेव और नारद आदिके भाव सख्य और दासरस मिश्रित हैं। रुद्र, गरुड़ और उद्धव आदिके भाव दास्य और सख्य रस मिश्रित हैं।'

ब्रजनाथ—'प्रभो! वात्सल्य रस समझ गया। अब कृपा कर चरम रस स्वरूप मधुर रसकी व्याख्या कीजिये, जिसे सुनकर हम धन्य हों।'

गोस्वामी—'मधुर भक्तिरसको मुख्य भक्तिरस कहा गया है। जड़रसाश्रित जीवकी बुद्धि ईश्वर परा-यण होने पर निवृत्ति धर्मको प्राप्त करती है। पुनः जब तक वह चिद्रसका अधिकारी नहीं हो जाता तब तक उसकी प्रवृत्ति मधुर रसमें संभव नहीं है। ऐसे लोगोंकी इस रसमें उपयोगिता नहीं है। मधुर रस स्वभावतः ही दुरूह है, इसके अधिकारी बड़े दुर्लभ हैं, इसलिये यह रस अत्यन्त गोपनीय है। इसीलिये मधुर रस स्वभावतः विस्तृत होने पर भी यहाँ पर इसका संक्षेपमें ही वर्णन करूँगा।'

ब्रजनाथ—'प्रभो! मैं सुबलका अनुगत हूँ। मुझे

मधुररस श्रवण करनेका अधिकार कितना है—उसे विचारकर मुझे इस विषयका श्रवण करायेंगे।'

गोस्वामी—'प्रियनर्म सखाओंका शृंगार रसमें कुछ हदतक अधिकार है। यहाँ मैं तुम्हारे अधिकारको ध्यानमें रखकर तुम्हारे लिये उपयोगी बातें ही बतलाऊँगा, तुम्हारे लिये अनुपयोगी बातोंको न कहूँगा।'

ब्रजनाथ—'इस रसके आलम्बन कौन-कौन हैं?

गोस्वामी—'श्रीकृष्ण इस रसमें विषय आलम्बन हैं, वे असमानोर्द्ध (जिसके समान अथवा जिससे बड़ा दूसरा न हो) सुन्दर नागर-लीला रसिकताके परमाश्रय हैं। ब्रजगोपिकाएँ इस रसके आश्रय-आलम्बन हैं। समस्त प्रेयसियोंमें श्रीमती राधाजी ही श्रेष्ठा हैं। मुरली-ध्वनि इस रसका उद्दीपन है। कनखीसे देखना और हँसी—ये इस रसके अनुभाव हैं। समस्त सात्त्विक भाव इस रसमें पूरी तरहसे प्रकाश पाते हैं। आलस्य और उग्रताको छोड़कर समस्त व्यभिचारी भाव-समूह रसमें लक्षित होते हैं।'

ब्रजनाथ—'इस रसका स्थायी भाव कैसा होता है?'

गोस्वामी—'मधुर रति आत्मोचित विभाव द्वारा पुष्ट होकर मधुर भक्ति रस होता है। यह राधामाधवकी रति किसी प्रकार भी स्वजातीय अथवा विजातीय भावोंके द्वारा विच्छेद दशाको प्राप्त नहीं होती।'

ब्रजनाथ—'मधुर रस कितने प्रकारका होता है?'

गोस्वामी—'विप्रलंभ और संभोग भेदसे मधुर रस दो प्रकारका होता है।'

ब्रजनाथ—'विप्रलंभ किसे कहते हैं?'

गोस्वामी—'पूर्वराग, मान और प्रवास आदि भेदसे विप्रलंभ अनेक प्रकारका होता है।'

ब्रजनाथ—'पूर्वराग किसे कहते हैं?'

गोस्वामी—'मिलनसे पहले जो भाव होता है, उसे पूर्वराग कहते हैं।'

ब्रजनाथ—'मान और प्रवास कैसे होते हैं?'

गोस्वामी—'मान तो स्पष्ट है, प्रवासका अर्थ है बिछुड़न।'

ब्रजनाथ—'संभोग किसे कहते हैं?'

गोस्वामी—'दोनोंके मिलन होने पर जो भोग (आनंद) होता है, उसे संभोग कहते हैं। मधुर रसके सम्बन्धमें और अधिक कुछ नहीं कहूँगा। मधुर रसके अधिकारी साधक इस विषयका रहस्य श्रीउज्ज्वलनीलमणि-ग्रन्थका अनुशीलन कर जान लेंगे।'

ब्रजनाथ—'गौणभक्तिरसोंकी स्थितिके सम्बन्धमें कुछ बतलानेकी कृपा करें।'

गोस्वामी—'गौण रस सात हैं-हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक और विभत्स। जब ये प्रबल होकर मुख्य रसका स्थान स्वयं ग्रहण करते हैं, तब ये अलग-अलग रसके रूपमें लक्षित होते हैं। जब ये स्वाधीन रसके रूपमें कार्य करते हैं, तब वे स्थायी भाव होकर अपने लिये उचित विभाव आदि द्वारा पुष्ट होकर रस हो पड़ते हैं। वास्तवमें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच ही रस हैं। हास्य आदि सात गौण रस साधारणतः व्यभिचारी भावोंके ही अन्तर्भूत होते हैं।

ब्रजनाथ—मैंने अलंकार शास्त्रमें रस विचारका जो अध्ययन किया है, उससे हास्य आदिके सम्बन्धमें पूरी तरहसे परिचित हूँ। अब यह बतलाइये कि मुख्य रसोंके साथ इनका क्या सम्बन्ध है?'

गोस्वामी—'अब मैं शान्त आदि रसोंकी परस्पर मित्रता और शत्रुताकी बातें बतला रहा हूँ। दास, विभत्स, धर्मवीर और अद्भुत रस—ये शान्तरसके मित्र हैं। अद्भुत रस, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रसका मित्र है। शान्त रसके शत्रु हैं—मधुर, युद्धवीर, रौद्र, भनायक रस-समूह। विभित्स, शान्त, धर्मवीर और दानवीर रस—ये दास्य रसके मित्र हैं। उसके शत्रु हैं—मधुर, युद्धवीर और रौद्ररस। सख्य के मित्र मधुर, हास्य और युद्धवीर हैं तथा शत्रु हैं—वात्सल्य, वीभत्स, रौद्र और भयानक रस। हास्य, करुण और भयानक ये वात्सल्यके मित्र हैं तथा-

मधुर, युद्धवीर, दास्य और रौद्र रस उसके शत्रु हैं। हास्य और सख्यरस-मधुरके मित्र हैं, वात्सल्य, वीभत्स शान्त, रौद्र और भयानक उसके शत्रु हैं। वीभत्स, मधुर और वत्सल रस—ये हास्य रसके मित्र हैं और करुण और भयानक शत्रु हैं, वीर, शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये अद्भुतके मित्र हैं। हास्य, सख्य, दास्य, रौद्र और वीभत्स शत्रु हैं। वीर रसका मित्र अद्भुत रस है तथा शत्रु है—भयानक रस। किसी-किसीके मतसे शान्त भी वीर रसका शत्रु है। रौद्र और वात्सल्य—ये करुण रसके मित्र हैं, वीररस हास्यरस, संभोग नामक शृंगाररस तथा अद्भुत रस ये करुणा रसके शत्रु हैं। करुणरस और वीररस— ये रौद्र रसके मित्र हैं, तथा हास्य, शृंगार और भयानक रस उसके शत्रु हैं। वीभत्स, और करुण रस—ये भयानकके मित्र हैं और वीर, शृंगार, हास्य और रौद्र रस भयानकके शत्रु हैं। शान्तरस, हास्य रस और दास्य रस—ये वीभत्सके मित्र हैं तथा शृंगार और सख्य रस उसके शत्रु हैं। और बाकी सभी परस्पर तटस्थ हैं।'

ब्रजनाथ—'परस्पर मिलनका फल वर्णन कीजिए।'

गोस्वामी—'मित्र रसोंके मिलनसे रसका आस्वादन बढ़ जाता है। अंग और अंगीके रूपमें रसोंको मिलाना अच्छा है। मुख्य हो अथवा गौण हो, मित्र रसको अंगी रसका मित्र बनाना उचित है।'

ब्रजनाथ—'अंग और अंगीका भेद बतलानेकी कृपा करें।'

गोस्वामी—'मुख्य या गौण कोई भी रस क्यों न हो जब वह दूसरे रसोंको दबाकर स्वयं प्रधान रूपमें प्रकाशित होता है, तब वह अंगी होता है और जो रस अंगी-रसकी पुष्टि करता है, वह अंगके रूप में संचारी भावका स्थान ग्रहण करता है। विष्णुधर्मोत्तर में कहा गया है।

'रसानां समवेतानां यस्य रूपं भवेद्बहु ।
स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषाः संचारिणो मताः ॥

अर्थात् रसोंके एकत्र मिलने पर उनमें जिस रस का स्वरूप अधिक होता है— उस रसको 'स्थायी' रस और दूसरे-दूसरे रसोंको संचारी भाव समझना चाहिए।'

ब्रजनाथ—'गौण रस किस प्रकार अंगी हो सकता है?'

गोस्वामी—'श्रीरूप गोस्वामीने कहा है—

'प्रोद्यन विभावनोत्कर्षात् पुष्टिं मुख्येन लंभितः ।
कुंचता निजनाथेन गौणोप्यङ्गित्वमश्नुते ॥
मुख्यस्त्वङ्गत्वमासाद्य पुष्णन्निन्द्रमुपेन्द्रवत् ।
गौणमेवाङ्गिनं कृत्वा निगूढ़ निज वैभवः ॥
अनादिवासनोद्भास-वासिते भक्तचेतसि ।
भात्येव न तु लीनः स्यादेष संचारिगौणवत् ॥
अङ्गी मुख्यः स्वमन्नाङ्गैर्भावैस्तैरभिवर्द्धयन ।
स्वजातीयैर्विजातीयैः स्वतन्त्रः सन् विराजते ॥
यस्य मुख्यस्य यो भक्तो भवेन्नित्यनिजाश्रयः ।
अङ्गी स एव तत्र स्यान्मुख्योऽप्यन्योऽङ्गतां व्रजत् ॥

अर्थात्—कभी कभी गौणरस भी संकोचभाव (गौणभाव) को प्राप्त हुए अपने प्रभु मुख्य रस द्वारा पुष्ट होकर एवं विभावकी अधिकतासे उदित होकर अङ्गित्वको प्राप्त होता है। उस समय मुख्य रस अंगत्व प्राप्त होकर अपने वैभवको छिपाकर अंगिभाव प्राप्त गौण रसको पुष्ट करता है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह उपेन्द्र अर्थात् भगवान वामनदेव देवराज इन्द्रका पोषण करते हैं। भक्तकी अनादि अप्राकृत सेव वासनाकी पवित्रगन्धयुक्त चित्त-भूमि पर यह मुख्य रस गौण संचारी भावोंकी तरह लीन नहीं हो जाता अर्थात् जिस प्रकार गौण रस व्यभिचारिता प्राप्त होकर मुख्य रसमें लीन हो जाते हैं, उस प्रकार मुख्य रस लीन नहीं हो जाता, परन्तु प्रकाशित रहता है। मुख्य अंगिरस अंगस्वरूप स्वजातीय भावसमूह द्वारा अपनेको पुष्ट कर स्वतंत्र रूपमें प्रकाशित होते हैं। जो जिस मुख्य रसके रसिक होते हैं, वे अपने उसी रसके ही नित्य आश्रित होते हैं। वही रस उनके सम्बन्ध में अंगी रसके रूपमें प्रकाशमान रहता है।

दूसरे रस समूह मुख्य होने पर भी पूर्व कथित अंगि-रसकी अंगताको प्राप्त होते हैं अर्थात अंगके रूपमें कार्य करते है।'

और भी देखो, यदि अंगरस अंगीरससे मिल कर रसास्वादनको अधिक बढ़ा देता है, तभी वह अंगरस माना जायगा, अन्यथा उसका मिलन व्यर्थ है।'

ब्रजनाथ—'रसके साथ शत्रुरस मिलनेसे क्या होता है?'

गोस्वामी—'जिस प्रकार किसी बहुत ही मीठे रसमें अम्ल, लवण या कटु आदिके मिलनेसे वे विरसता उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार एक रसमें शत्रुरस मिलनेसे विरसता उत्पन्न होती है। ऐसे रस-विरोध को रसाभास दोष कह सकते हैं।'

ब्रजनाथ—'क्या रसविरोध किसी भी दशामें अच्छा नहीं होता?'

गोस्वामी—'श्रीरूपगोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धु में कहा है—

द्वयोरेकतरस्येह बाध्यत्वेनोपवर्णने ।
स्मर्यमाणतराप्युक्तौ साम्येन वचनेऽपि च ॥
रसान्तरेण व्यवधौ तटस्थेन प्रियेण वा ।
विषयाश्रयभेदे च गौणेन द्विषतासह ।
इत्यादिषु न वैरस्यं वैरिणो जनयेद्युतिः ॥
(भ. र. सि. उ० ८ ल. ४३)

और भी देखो, युधिष्ठिर आदिमें दास्य और वात्सल्य पृथक पृथक समयमें प्रकाशित होता है। परस्पर शत्रु रस एक ही समय एक ही साथ उदय नहीं होते। परन्तु अधिरूढ़ महाभावमें विरुद्ध भाव-समूह यदि एक ही समय एक ही साथ उदय हों तो वहाँ विरुद्ध नहीं होते। श्रीरूप गोस्वामी भक्तिरसा-मृतसिन्धुमें कहते हैं—

'काप्यचिन्त्यमहाशक्तौ महापुरुषशेखरे ।
रसावलिसमावेशः स्वादायैवोपजायते ॥

अर्थात् कहीं-कहीं पर अचिन्त्य महाशक्तिसे युक्त महापुरुषशिरोमणिमें एक ही साथ एक ही समय अनेक विरुद्ध रसोंका जो समावेश हुआ करता है, वह आस्वादनकी चमत्कारिताके लिये ही होता है।

ब्रजनाथ—'मैंने विद्वान वैष्णवोंसे सुना है कि कि श्रीमन्महाप्रभुजी रसाभासको बड़ी बुरी दृष्टिसे देखते थे; यहाँ तक कि जिन गीतों, कीर्तनों एवं पदों में रसाभास दोष होता था, उन्हे कदापि सुनते न थे। आज मैं रसाभास दोषको भलीभाँति समझ गया। अब कृपा कर आप यह बतलाईये कि रसाभास कितने प्रकार के होते हैं।

गोस्वामी—'रस अंगहीन होने पर उसे रसाभास कहते हैं। उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ भेदसे रसाभास को उपरस, अनुरस और अपरस कहा जा सकता है।

ब्रजनाथ—'उपरस किसे कहते हैं?'

गोस्वामी—'स्थायी, विभाव और अनुभावादि द्वारा शान्त आदि बारह रस ही उपरस हो सकते हैं। स्थायीवैरूप्य, विभाववैरूप्य, अनुभाव वैरूप्य उपरस के हेतु हैं।

ब्रजनाथ—'अनुरस किसे कहते हैं?'

गोस्वामी—'कृष्णसम्बन्ध वर्जित हास्य आदि रस समूह अनुरस कहलाते हैं। तटस्थ व्यक्तियोंमें जो वीर आदि रस उदय होते हैं, वे भी अनुरस हैं।'

ब्रजनाथ—'जिसमें कृष्णसम्बन्ध न हो, वे तो रस ही नहीं; उन्हें तो जड़ रस कहेंगे। फिर अनुरसका ऐसा लक्षण क्यों कहा गया?'

गोस्वामी—'साक्षातरूपसे कृष्ण सम्बन्धरहित रस ही अनुरस है। जैसे-- कक्खटी (श्रीमती राधाकी पालतू बन्दरी) की नाक देख कर गोपियोंका हँसना, भाण्डीरवनमें एक पेड़की डाल पर बैठे शुकपक्षियों को परस्पर वेदान्तका विचार करते देखकर देवर्षि नारदके हृदयमें परम अद्भुत रसका उदय होना। यहाँ पर कृष्णका, उक्त हँसी या नारदके हृदयमें उदित रसके साथ कोई सीधा या साक्षात सम्बन्ध नहीं है, किसी प्रकार दूरका कृष्णसम्बन्ध देखा जाता है। इसलिये यहाँ दोनों स्थल अनुरसके हैं।

ब्रजनाथ—'अपरस किसे कहते हैं?'

गोस्वामी—'कृष्ण या कृष्णके विरोधी यदि

हास्य आदिकी विषय-आश्रियता प्राप्त होते हैं, तो वह हास्य आदि अपरस कहें जायेंगे। कृष्णको भागते देखकर जरासंधने जो बार-बार हँसा—वह अपरस है। श्रीरूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धु (३. ६ लहरी २१) में लिखा है—

भावाः सर्वे तदाभासा रसाभासाश्च केचन ।
अमीप्रोक्ता रसाभिज्ञैः सर्वेऽपि रसनाद्रसाः ॥

अर्थात् भावोंको कोई कोई तदाभास और कोई कोई रसाभास कहते हैं, परन्तु रसाभिज्ञ पण्डित अप्राकृत आनन्दप्रद भावोंको ही रस कहते हैं।

रस-तत्त्वका ऐसा सुन्दर, सरस और मर्मस्पर्शी विवेचन श्रवण विजयकुमार और ब्रजनाथकी आँखें सजल हो आयीं। वे रोते रोते गद्‌गद् वचनोंसे श्रीगुरु गोस्वामीके चरणकमलोंमें गिर कर बोले—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः

—जिन्होंने दिव्यज्ञान रूप अंजनशालाका द्वारा (१) स्वरूप की अज्ञानता, (२) जड़शरीरमें आत्म-बुद्धि, (३) जड़ विषयोंमें मेराकी बुद्धि अर्थात् भोक्ता-भिमान, (४) भेद अथवा द्वितीयभिनिवेश अर्थात् कृष्णके अतिरिक्त दूसरी वस्तुओंमें आसक्ति, (५) भय और विरूप-ग्रहण—इस पाँच प्रकारके अज्ञान और उससे उत्पन्न धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी कामनारूप अज्ञानान्धकार राशिको दूर कर दिव्य हरिसेवोन्मुख नेत्र खोल दिये हैं, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है।

श्रीगुरुगोस्वामीने बड़े प्रेमसे दोनोंको उठाकर आलिंगन किया और आशीर्वाद दिया—'तुम लोगोंके हृदयमें रसतत्त्वका स्फूरण होवे।'

विजय और ब्रजनाथ प्रतिदिन श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामीसे परमार्थकी चर्चा करते हैं एवं श्रीगुरु-गोस्वमीके चरणामृत और अधरामृत (प्रसाद) ग्रहण करते हैं। वे किसी दिन भजन कुटीमें, किसी दिन श्रीहरिदासकी समाधिमें, किसी दिन श्रीगोपी-नाथजीके मन्दिरमें और किसी दिन सिद्धबकुलमें अनेक शुद्ध वैष्णवोंकी भजन-मुद्रा देखकर अपने-अपने भजनके अनुकूल भावोंमें मग्न हो पड़ते हैं। 'स्तवावली' और 'स्तवमाला' ग्रन्थोंमें लिखे गये श्रीमन्महाप्रभुके भावावेशके स्थानोंका दर्शन करते हैं। जिन स्थानोंमें शुद्ध वैष्णव कीर्तन करते हैं, वहाँ नामकीर्तनमें सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार दोनोंके भजनमें क्रमशः उन्नति होने लगी। विजयकुमारने मन-ही-मन सोचा कि श्रीगुरुगोस्वामीने हमें संक्षेपमें ही मधुर रसकी शिक्षा दी है। ब्रजनाथ सख्यरसमें ही मग्न रहे। मैं समयानुसार अकेला आकार श्रीगुरु-गोस्वामीके समीप मधुररसका साङ्गोपाङ्ग विवेचन श्रवण करूँगा।' ऐसा सोचकर वे श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामीकी कृपासे एक 'श्रीउज्ज्वलनीलमणि' ग्रन्थ संग्रह किये और उसे अध्ययन करने लगे। बीचमें कोई संदेह उपस्थित होने पर श्रीगुरु गोस्वामीसे पूछ कर संदेह दूर कर लेते।

एक दिन विजय और ब्रजनाथ घूमते-घूमते समुद्र-तीर पर उपस्थित हुए। संध्याका समय था। वे लोग एक जगह तीर पर बैठकर समुद्रकी लहरियों-को देखने लगे। लहरियोंका कहीं भी अन्त नहीं, निरन्तर आती ही रहती हैं। इसे देखकर उनके मनमें यह भाव उठा कि यह जीवन भी लहरियोंसे पूर्ण है। कब क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। अतएव हमें रागमार्गकी भजन-पद्धति शीघ्र ही सीख लेनी चाहिए। ब्रजनाथने कहा—ध्यानचन्द्र गोस्वामीने जो पद्धति लिखी है, उसे मैंने देखा है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि गुरुपदेश मिलनेसे उससे सुन्दर फल पाया जा सकता है। मैं उस पद्धतिकी नकल कर लूँगा। ऐसा स्थिर कर उन्होंने श्रीध्यान-चन्द्र गोस्वामीसे उक्त पद्धतिको नकल करनेके लिये माँगा। परन्तु श्रीध्यानचन्द्रने गुरुगोस्वामीकी आज्ञा के बिना देना अस्वीकार कर दिया।

श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामीकी बात सुनकर वे दोनों गुरुगोस्वामीके समीप पहुँचे और उक्त भजन-पद्धति-को दिलानेकी अनुमति देनेकी प्रार्थना की। श्रीगुरु-गोस्वामीने अनुमति दे दी। विजय और ब्रजनाथने पद्धति-ग्रन्थको प्राप्तकर उसकी पृथक्-पृथक् रूपमें

नकल कर ली और स्थिर किया कि अवकाशके समय श्रीगुरु गोस्वामीके समीप इस पद्धतिको भलीभाँति समझ लेना आवश्यक है।

श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामी समस्त शास्त्रोंके पारदर्शी पण्डित थे। विशेषतः हरिभजन-तन्त्रमें उनके समान कोई पारदर्शी पण्डित न था। श्रीगोपाल गुरुके शिष्योंमें वे सर्वप्रधान थे। विजय और ब्रजनाथको भजनके सम्बन्धमें योग्य अधिकारी समझकर उन्होंने उन दोनोंको भलीभाँति शिक्षा दी थी। विजय और ब्रजनाथ बीच-बीचमें श्रीगुरुगोस्वामीके चरणोंमें उपस्थित होकर भजन-सम्बन्धी समस्त प्रकारके सन्देहों दूर कर लेते। धीरे-धीरे वे श्रीमन्महाप्रभुके दैनन्दिन चरित्र एवं श्रीकृष्णकी दैनन्दिन लीलाओंका सम्बन्ध समझ कर अष्टकालीन भजनमें प्रवृत्त हो गये!

तीसवाँ अध्याय समाप्त

जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपादकी विरह-तिथिके अवसर पर

श्रीश्रीआचार्यदेवका दीक्षान्त भाषण

आज श्रीश्रीप्रभुपादजीकी विरह तिथि है इस परम पवित्र विरह तिथिके अवसर पर प्रति वर्ष हम हरिकथा कीर्तन करते हैं। श्रीप्रभुपादजी साक्षात कीर्तन-विग्रह थे। जिन लोगोंको उनका सत्सङ्ग करनेका तनिक भी सुयोग मिला है, वे इस कथनकी सत्यताकी उपलब्धि किये हैं। हरिकथा कहनेमें वे मानों सहस्रमुखवाले हो पड़ते थे। भगवान्के नाम, रूप, गुण और उनकी लीला कथाओं-का कीर्त्तन करनेमें उनको इतना आनन्द होता था कि जिसको भाषा व्यक्त करनेमें असमर्थ है। साधारण मनुष्य आहार, विहार और निद्रामें आनन्द अनुभव करते हैं। इसलिये वे समस्त कर्मोंको छोड़ कर आहार-निद्रामें ही प्रमत्त रहा करते हैं। आहार-निद्रा जनित सुखसे बढ़ कर कोई और भी सुख है—उनको पता नहीं। परन्तु श्रीलप्रभुपाद आहार-निद्रासे भी अधिक सुखका अनुभव हरिकथा-कीर्तनमें करते थे; इसीलिये वे आहार-निद्राका विसर्जन कर हरिकथा कीर्तन किया करते थे। हमलोग अपनी प्राकृत धारणा-के अनुसार ऐसा समझते थे कि यदि वे इस प्रकार दिनरात निरन्तर हरिकथा कहते रहेंगे तो उनका स्वास्थ्य बिगड़ जायगा; इसलिये उनकी हरिकथामें कभी-कभी बाधा देनेका प्रयत्न करते थे; नियमित रूपसे आहार और विश्रामके लिये उनको हरिकथा कीर्तनके बीचसे आनेके लिये अनुरोध करते थे, बार-बार बुलाते थे। इस पर वे कभी-कभी बड़े असन्तुष्ट होकर कहते—'आहार और बिहार ही मनुष्य जीवन का प्रधान कर्त्तव्य नहीं है।'

साधारणतः ऐसा देखा जाता है कि आमोद-प्रमोद-प्रिय व्यक्ति आहार और निद्राका परित्याग कर अक्सर रातमें जग कर सिनेमा, थियेटर आदि देखते सुनते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि नाच-गान, सिनेमा, थियेटर में वे लोग एक ऐसा आनन्द पाते हैं कि वे आहार-निद्रा छोड़ कर भी रातभर जगनेकी चिन्ता बिलकुल नहीं करते। जिस विषयमें जिसकी अधिक आसक्ति होती है, वह उसी विषयमें अधिक मत्त होकर रहना चाहता है। अतएव अतिमर्त्य स्वभावयुक्त श्रीप्रभुपादका आहार निद्रा वर्जन कर अप्राकृत हरिकथा-कीर्तनानन्दमें मत्त होना स्वाभाविक है।

जगद्गुरु श्रीप्रभुपाद श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वतीके नामसे परिचित हैं। उनके इस नाम और नामीमें कोई भेद नहीं था अथवा नहीं है। इसलिये उनको

साक्षात् वाणी-विग्रह कहा जाता है। वे 'श्रीसिद्धान्त सरस्वती'—इस प्रकार अपना नाम साक्षर करते थे। अत्यन्त अधिक दैन्यके कारण अपने नामके पूर्व 'भक्ति'-शब्दका प्रयोग नहीं करते थे। वास्तवमें भक्तितत्त्वके समस्त सिद्धान्तसमूहोंके सरस्वती-स्वरूप थे—श्रीप्रभुपादजी। किसी विषयके तात्पर्यका निर्णय करनेमें 'सिद्धान्त' ही सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है। विचार जगत्में कोई 'सिद्धान्त' स्थापन करनेके लिये इसके पूर्वपक्ष आदि और भी दूसरे-दूसरे अङ्गोंका उल्लेख देखा जाता है। दार्शनिक-क्षेत्रमें हम विषय, संशय, पूर्वपक्ष, सिद्धान्त और सङ्गति—इन पाँच अङ्गोंको लक्ष्य करते हैं। इनमें सिद्धान्त ही सर्वश्रेष्ठ है। सङ्गति सबसे पीछे आने पर भी उसका दूसरा नाम विरोध-निरास है। यह सिद्धान्तके अधीन अङ्ग है। जगद्गुरु श्रीश्रीप्रभुपाद इस 'सिद्धान्तकी अधिष्ठात्री देवी—स्वरस्वती-स्वरूप हैं। महर्षि व्यासदेवने पुराण, उपपुराण महाभारत आदि सिद्धान्त-ग्रन्थोंमें सबसे आरम्भमें श्रीसरस्वतीदेवीकी वन्दना की है। जिन्होंने श्रीवेदव्यासके ग्रन्थोंको पढ़ा है, वे निम्नलिखित उनके इस श्लोकको अवश्य ही जानते होंगे—

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

महर्षि वेदव्यासके प्रत्येक ग्रन्थके मङ्गलाचरणमें उक्त श्लोककी अवतारणकी गयी है। इससे यह समझना होगा कि स्वरस्वतीदेवी समस्त प्रकारके सिद्धान्तोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इसी व्यासदेवने सरस्वती देवीका स्तव किया है। श्रीठाकुर भक्तिविनोदजीने भी अपने एकान्त निजजन श्रीप्रभुपादको उद्देश्य कर लिखा है—

"सरस्वती कृष्णप्रिया कृष्णभक्ति यार हिया
विनोदेर सेइ से वैभव।"

उक्त पदके द्वारा हम जान पाते हैं कि यद्यपि श्रीप्रभुपाद दैन्य करके 'भक्ति' शब्दको छोड़कर केवल 'सिद्धान्त सरस्वती'-ऐसा ही हस्ताक्षर किया करते, तथापि 'कृष्ण भक्ति यार हिया' पदके द्वारा यह सुस्पष्ट है कि श्रीप्रभुपादजी साक्षात् भक्तिसिद्धान्तके पूर्ण अभिव्यक्ति-स्वरूप थे। अतएव 'श्रीसरस्वती' कहनेसे श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वतीको ही समझना चाहिए।

हम 'विद्या' और 'अविद्या' दो शब्दोंको सुन पाते हैं। इनमें विद्या दो प्रकारकी बतलायी गयी है-पराविद्या और अपरा विद्या। पराविद्या ही यथार्थ विद्या है। अपरा विद्या-अविद्याके ही अन्तर्गत चली आती है। इन दोनों विद्याओंकी अधिष्ठात्री देवियों-को सरस्वती कहा जाता है। फिर भी दोनों विद्याओं-की अधिष्ठात्री देवियाँ एक नहीं हैं। पराविद्याकी अधिष्ठात्री देवी शुद्धा वा शिष्टा सरस्वती हैं तथा अपरा विद्याकी अधिष्ठात्री देवी छाया-सरस्वती या दुष्टा-सरस्वती हैं। आजकाल हमारे देशमें बहुतसे लोग 'सरस्वती' उपाधि धारण करते हैं। ये छाया सरस्वतीके आश्रित जीव हैं। जगद्गुरु श्रीप्रभुपादजी साक्षात् शुद्धा सरस्वतीके रूपमें भौम-जगतमें आवि-र्भूत हुए थे। आज कृष्णा चतुर्थी तिथि है, उनका विरह दिवस आज मनाया जा रहा है। शास्त्र-विरोधी पार्थिव विषयोंको केन्द्रकर जीवन निर्वाह करनेवाले मनीषिवृन्द 'सरस्वती' उपाधि धारण करने पर उन्हें छाया या दुष्टा सरस्वती समझना चाहिए। श्रीमद्भा-गवतका विरोध करना ही दुष्टा सरस्वतीका प्रधान लक्षण है। हम ऐसे श्रेणीके मनीषी नामधारी व्यक्तियोंकी बोलतीको शुद्धा सरस्वतीकी कृपासे शीघ्र ही बन्द करेंगे, इसलिये कि वे भागवत-विरोधी हैं।

अविद्या और माया

मैंने पहले ही बतलाया है कि अविद्याकी अधि-ष्ठात्री देवी हैं-दुष्टा या छाया सरस्वती। शास्त्रमें 'अविद्या' और 'माया'-ये दोनों शब्द प्रचुर परिमाण-में व्यवहृत दिखलायी पड़ते हैं। इनमें 'माया' भी पृथक्-पृथक् दो विशेषणोंसे युक्त होकर दो तत्त्वोंमें विभक्त दिखलायी पड़ती हैं-योगमाया और महा-

माया। योगमायाकी छाया ही महामाया है। योग-माया परतत्त्वके अन्तर्भूत पराशक्ति है। महामाया और अविद्या एक ही तत्त्व हैं। परन्तु किसी-किसी दार्शनिकने 'माया' शब्दके उक्त दोनों प्रकारके भावोंका तात्पर्य न समझनेके कारण भ्रामक सिद्धान्तोंका प्रचार कर सिद्धान्त-राज्यमें बड़ी गड़बड़ी मचा दी है। किसीका कथन यह है कि—'माया जीवको व्याप्ती है और अविद्या ईश्वरको। अर्थात् ब्रह्म अविद्या द्वारा आच्छादित होने पर 'ईश्वर' कहलाता है तथा ब्रह्म मायाद्वारा आच्छादित होने पर जीव कहलाता है।' अतएव इनके विचारसे अविद्या और माया पृथक् पृथक् तत्त्व हैं; दोनोंमें भेद यह है कि अविद्या-मायासे अधिक शक्तिशाली होती है। अविद्या अधिक बलवान होनेके कारण ब्रह्म-तत्त्वको ढककर उसे ईश्वरके रूपमें बदल देती है और माया अविद्यासे कुछ कमजोर होनेके कारण ब्रह्मको ढक कर जीवके रूपमें बदल देती है। अतएव उनके विचारसे अविद्या मायासे श्रेष्ठ है। परन्तु वास्तवमें यह विचार सर्वथा निराधार और शास्त्र विरुद्ध है। वैष्णवकुल चूड़ामणि श्रीप्रभुपादजीने ऐसे विचारोंका अपने शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके बल पर धज्जी-धज्जी उड़ा दी है। श्रीकृष्णदास कविराजने भी कहा है—

"मायाधीश", "मायावश"—ईश्वर-जीवे भेद" ॥
(चै. च. म. ६।१६२)

वास्तवमें अविद्या और माया एक वस्तु है; केवल नाम अलग-अलग हैं। माया ईश्वरकी एक शक्ति है। यह शक्ति ब्रह्मको किसी भी प्रकार ढक नहीं सकती। यदि महामाया परमतत्त्वको भी वशीभूत कर सकती है, तो फिर जीव मायातीत कैसे हो सकता है ? जितनी प्रकारकी साधन-भजनकी चेष्टाएँ हैं उन सबका उद्देश्य है—जीवको मायासे मुक्त या परे करना। जीव इसीलिये साधन भजन करता है कि वह मायाके जन्म-मरणके बन्धनसे, सांसारिक क्लेशोंसे छुटकारा प्राप्त कर भगवत् राज्यमें प्रवेश कर सके। यदि ब्रह्म अथवा भगवान् भी मायाके वशीभूत (अधीन) ठहरते हैं, तब फिर जीव मायासे परे कैसे हो सकता है, ब्रह्म या भगवान् होने पर भी (उनके विचारसे) तो वे माया के अधीन ही बने रहे। अद्वैतवादी ईश्वरके प्रति कृपा कर कहना चाहते हैं कि ईश्वरकी अविद्या स्वेच्छासे है।' इससे तो यह कहा जा सकता है कि, फिर जीवकी माया अनिच्छाकृत है। ईश्वरने स्वेच्छासे अविद्याको क्यों स्वीकार किया ?—क्या वह जीवोंको उस अविद्या से मुक्त करनेके लिये ऐसा किया है ? यदि इस युक्तिको स्वीकार करें तो आचार्य शङ्कर द्वारा रचित भाष्य ही इसकी सर्वप्रथम विरोधिता करेगा। क्योंकि उनके ब्रह्ममें इच्छा शक्तिका सर्वथा अभाव है—कारण यह है कि उनका ब्रह्म निःशक्तिक माना गया है। ऐसी दशामें ब्रह्मने (निःशक्तिक होनेके कारण) स्वेच्छासे अविद्याको स्वीकार किया है—यह बात निराधार, अयुक्तिसंगत वाक् चातुरी मात्र है।

प्राचीन और आधुनिक निर्विशेष विचार

सृष्टिके प्रारम्भसे ही ईश्वर विरोधी-चिन्ताश्रोत ईश्वर-चिन्ताश्रोतको संजीवित और सतेज करता आ रहा है। शब्दकी साम्बन्धिकता ही इसका कारण है। वर्तमान मध्ययुगकी दार्शनिक विचार-धारा प्रागैतिहासिक विचारधारासे प्रकटित होने पर भी दोनों एक नहीं हैं। अद्वैत-चिन्ताश्रोत सृष्टिके प्रारम्भ में जिस प्रकारसे दार्शनिक जगत्में प्रचलित थी, वह युगपरिवर्तनके साथ समयानुसार बहुत कुछ विकृत रूपमें दिखलायी पड़ती है। आचार्य शङ्करका अद्वैत वाद, औपनिषदिक युगके अद्वैतवादका विकृत और हेय प्रतिफलन मात्र है। वैदिक युगकी निर्विशेष-चिन्ताधारा और शङ्करकी निर्विशेष चिन्ताधारा—ये सम्पूर्ण पृथक् हैं। वैदिक और औपनिषद् युगमें अद्वैतवाद केवल जड़द्वैत धारणके प्रतियोगीके रूपमें प्रचलित था। उस समय वह जड़-सविशेषवादका खण्डन कर चिद्-सविशेष वस्तुकी ही बात बतलाता था। आधुनिक कालमें अद्वैतवादी विचारधारामें उस परम निगूढ़ तत्त्वकी उपेक्षा की गयी है। इसी-लिये आधुनिक अद्वैतवाद अवैदिक कहा गया है।

इतिहास और तत्त्ववस्तु एक नहीं है

ऐतिहासिकता नास्तिकताके ऊपर प्रतिष्ठित है। ऐतिहासिक ईश्वर-विश्वास रहित होते हैं। उनका विचरण क्षेत्र केवल मात्र पार्थिव जगत् है। पार्थिव जगत्के बाहरकी किसी बात पर वे विश्वास नहीं करते। प्रकृति देवीने उनकी उस शक्तिका अपहरण कर रखा है। इसलिये उनका अलौकिक वस्तुमें तनिक भी विश्वास नहीं होता। वे अपने समान मूर्ख व्यक्तियोंको ही विद्वान समझते हैं। परन्तु 'तत्त्व-वस्तु उनकी पहुँचसे बाहर स्थित है'—वे इस बात पर विश्वास नहीं कर पाते। वे लोग सर्वशक्तिमान या अचिन्त्य-शक्तिमान तत्त्वकी सत्ता स्वीकार नहीं करते। वास्तवमें भगवान् अघटन-घटन-पटीयसी शक्ति-सम्पन्न परतत्त्व वस्तु हैं। यदि वे चाहें तो सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्रकी गति बन्द कर अथवा बदल कर किसी दूसरी पृथ्वीमें चला सकते हैं। इस तथ्यको ऐतिहासिक अथवा प्राकृत ज्योतिषीगण स्वीकार नहीं करेंगे। ईश्वरकी अतिमर्त्य अलौकिक क्रियाओंको समझ लेना ऐतिहासिकोंके दिमागके बाहरकी बात है। अतएव ऐतिहासिकोंके दृष्टिकोणसे किसी शास्त्रका अध्ययन करनेसे कुछ लाभ होनेके बदले सम्पूर्ण रूप-से हानिकर है। पाश्चात्य शिक्षाने हमारे देशका सर्वनाश कर डाला है। हम आनन्द चाहते हैं; परन्तु ऐतिहासिक-चिन्ता द्वारा आनन्दकी कदापि प्राप्ति नहीं हो सकती—यह ध्रुव सत्य है।

आजकल जीवनी-लेखकोंकी विचारधारा भी ऐतिहासिकोंके समान ही हो गयी है। लेखक या समालोचक निरपेक्षताके पर्दमें अधिकांश रूपमें अपनी असत्-चिन्ताओंसे उत्पन्न अपने दूषित विचारोंको जीवनीमें घुसेड़ देते है। ऐसे लेखक साधारण धर्म-विश्वासकी भी हत्या कर डालते हैं। आजकलके विद्यालय भी धर्म-विरोधी हो गये हैं और अहितकर शिक्षाका प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

जगत् कल्याणकी दिशामें श्रीसरस्वती ठाकुर

श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती जागतिक तथाकथित समस्त प्रकारकी विचार-धाराओंकी हेयता प्रमाणित कर वास्तविक कल्याणकारी विचार धाराको जगतमें प्रवाहित किया है। इस पुनीत कार्यकी प्रतिष्ठामें बहुत से लोग उनके प्रति असन्तुष्ट भी हुए। इसका कारण यह है कि साधारणतः लोग कल्याण क्या है, अक-ल्याण क्या है; समझ नहीं पाते। वे लोग जिसे कल्याण समझते थे, श्रीप्रभुपादजीने उसे अकल्याण बतलाया। साधारण जीव मायामोहमें पड़कर यथार्थ कल्याणसे दूर पड़ जाता है। वह कनक, कामिनी और प्रतिष्ठाका संग्रह करनेके लिये भगवद् उपासनामें प्रवृत्त होता है। वह कनक, कामिनी और प्रतिष्ठाकी प्राप्तिको ही कल्याण समझता है। परन्तु कनक, कामिनी और प्रतिष्ठा मनुष्य-जीवनके उद्देश्य नहीं है। जगत्में जीवोंकी चित्तवृत्ति साधारणतः इन्हीं विषयोंकी ओर होती है। श्रीकविराज गोस्वामी कहते हैं—

'कृष्ण कहे,—आमा भजे, माँगे विषय सुख।
अमृत छाड़ि विष माँगे,—एइ बड़ मूर्ख॥
आमि विज्ञ, एइ मूर्खे विषय केने दिब।
स्व-चरणामृते दिया 'विषय' भूलाइब॥

(चै. च. म २२।३८-३९)

तात्पर्य यह कि जब कोई जीव भगवद् भजन करता है और उस भजनसे भगवानको सन्तुष्ट कर उनसे अमृत (संसार बन्धनसे छुटकारा प्राप्तकर कृष्ण-प्रेमानन्द) न माँगकर विषय-सुख रूपी विष चाहता है तब भगवान् कृष्ण ऐसा सोचते हैं कि यह जीव कितना बड़ा मूर्ख है, जो मेरी उपासना कर मुझसे अमृत छोड़कर विषय-विष माँगता है। किन्तु मैं तो बुद्धिमान हूँ। इस मूर्खको विषय नहीं दूँगा। इसे तो अपने चरणोंके प्रति प्रेमभक्ति रूपी अमृत प्रदान कर उसकी विषय-सुख माँगनेकी इच्छाको भुला दूँगा अर्थात् कृष्णप्रेमका आस्वादन कर यह विषय सुख माँगनेकी बात सम्पूर्ण रूपसे भूल ही जायगा। इस प्रकार वह विषय-सुख न माँग सकेगा।

जगद् गुरु श्रीप्रभुपाद स्वयंभगवान श्रीकृष्णकी अन्तर्निहित इसी जगन्मगलकर शिक्षाके मूर्त्त आदर्श थे। विषयी लोग अथवा व्यवसायी लोग अपनी प्रतिष्ठाके लिये धनको पानीकी तरह बहानेमें भी हिचकते नहीं हैं। श्रीप्रभुपादजी ऐसे व्यक्तियोंसे किसी प्रकार अर्थ अथवा कोई द्रव्य ग्रहण करके उसे दाताकी इच्छानुसार व्यय नहीं करते थे, जिससे दाताकी प्रतिष्ठा आदि बढ़े और उसका परमार्थ नष्ट हो जाय, क्योंकि जड़-प्रतिष्ठा परमार्थ-पथमें बड़ी ही बाधक है। यदि कोई व्यवसायी धनी व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा छोड़ना अस्वीकार करता तब प्रभुपाद उसके दिये हुए अर्थको स्वयं ग्रहण नहीं कर उपेक्षा करते थे। उदाहरण-स्वरूप कहा जा सकता है कि किसी व्यक्तिने संसारमें अपनी स्मृति-चिह्न रखनेके लिये प्रभुपादको २५००) रुपये दिये। प्रभुपाद उस धनको ऐसे काममें लगाते थे जिससे दाताकी प्राकृत प्रतिष्ठा ध्वंस हो जाय तथा वैष्णवी प्रतिष्ठा संरक्षित हो। वे ऐसा सोचते थे कि दाताको प्रतिष्ठा-लोलुपता-स्वरूप विषय (संसारिक अनित्य प्रतिष्ठा आदि विषय-सुख) देना उचित नहीं। दाता यह नहीं समझता है कि यथार्थ कल्याण क्या है ? इसलिये उसका धन ऐसे कार्यमें खर्च किया जाय, जिससे उसका वास्तविक आत्मकल्याण हो। जड़ीय प्रतिष्ठा नितान्त तुच्छ है; इसलिये उसके धनका उपयोग ऐसे कार्यमें हो जिससे वह कृष्ण-प्रेम प्राप्त कर सके—यही मेरा परम कर्त्तव्य है। वे अक्सर ऐसा कहते—'मूर्ख लोगोंके धनको उनकी इच्छानुसार खर्च करनेसे उनका ही सर्वनाश करना होगा। अतएव मैं उनके सर्वनाशका भागी क्यों बनूँ ? दाताकी इच्छाके विरुद्ध भी उसके नित्य-कल्याणके लिये उसके धनको खर्च करना ही आदर्श परोकार है। ऐसी निगूढ़ शिक्षा देते समय श्रीप्रभुपादजी कलकत्ता (बागबाजार) गौड़ीय मठके निर्माण में सम्पूर्ण खर्च देनेवाले श्रीयुत जगबन्धु दत्त (जे० बी० डी०) और श्रीधाम मायापुरमें योगपीठ-मंदिर निर्माण करनेवाले श्रीयुत सखीचरण राय महोदयोंका नाम उल्लेख कर कहते—मैं इन दोनों दाताओंका कोई कल्याण नहीं कर सका। इनकी वनिकवृत्ति किसी प्रकार भी दूर नहीं हो रही है। ये यह नहीं जानते कि—"हम लोग लकड़ी और पत्थरके कारीगर बननेके लिये जगत्में नहीं आये हैं; हम तो केवल वैकुण्ठ जगत्की वाणीको वितरण करनेवाले डाकिया मात्र हैं।"

अस्तु श्रीश्रीप्रभुपादजीने उक्त दोनों महोदयोंकी प्रतिष्ठाकी अभिलाषाके प्रति लक्ष्यकर उन दोनोंको ही 'श्रेष्ठार्य' की उपाधि प्रदानकी थी। श्रेष्ठार्य-शब्दका अर्थ है—श्रेष्ठी+आर्य=श्रेष्ठी=बनिया और आर्य=श्रेष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ बनिया। हमने श्रीश्रीप्रभुपादके आचार-व्यवहारोंसे अनेक प्रकारकी निगूढ़ शिक्षाएँ पायी हैं। श्रीश्रीगुरुदेवकी मनोभिलाषाको पूर्ण करना ही सच्चे शिष्यका एकमात्र कर्त्तव्य है। इसके विरुद्ध श्रीगुरुदेवके द्वारा अपना स्वार्थ या अपनी अभिलाषा पूरी करा लेना शिष्यका कर्त्तव्य नहीं है; यह भक्ति विरोधी कार्य है। उपरोक्त उदाहरणमें शिष्य गुरुदेव द्वारा अपनी प्रतिष्ठाकी प्यास बुझाने की चेष्टा करता है। यदि गुरुदेव भगवद्-वाणीके प्रचारके लिये अथवा किसी गोस्वामी-ग्रन्थके प्रकाशनके धन-संग्रह करना चाहते हैं, तो मूर्ख प्रतिष्ठाकामी व्यक्ति इस विषयमें उदासीन रहते हैं। ईंट, लकड़ी और पत्थरका मन्दिर बनने पर उससे समस्त इन्द्रियोंकी तृप्ति हो सकती है और प्रतिष्ठाका गगन भेदी चूड़ा त्रिलोक भरमें देखा जा सकता है। अतएव ईंट-पत्थरके मन्दिरका ही निर्माण हो, ग्रन्थ प्रकाशित करानेसे क्या लाभ है ?—प्रतिष्ठाकामी धनी व्यवसायियोंकी ऐसी ही सूझ-बूझ हुआ करती है। (क्रमशः)

—श्रीगौड़ीय पत्रिकासे अनुमति

प्रचार-प्रसङ्ग

श्रीश्रीव्यासपूजा—

विगत २ फाल्गुन, १५ फरवरी, सोमवारसे ४ फाल्गुन १७ फरवरी, बुधवार—तीन दिनों तक श्रीश्रीव्यासपूजा या श्रीश्रीगुरुपूजाका अनुष्ठान श्री-गौड़ीय वेदान्त समितिके समस्त शाखा मठोंमें खूब धूम-धामके साथ सम्पन्न हुआ है। यों तो श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा, श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ, पिछलदा, श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ, गोलोकगञ्ज (आसाम) में श्रीव्यासपूजा विराट रूपमें मनाया गया है, फिर भी श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चूँचूड़ा (बङ्गाल) में समितिके आचर्य परमाराध्यतम परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके स्वयं उपस्थित रहनेके कारण वहाँ यह उत्सव विशेष समारोहके साथ मनाया गया है।

२ फाल्गुन, कृष्ण तृतीया, सोमवार श्रीश्रीगुरुपाद-पद्मकी शुभाविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ रङ्गविरङ्गी पताकाओं, वन्दनवारों और आम्रपल्लवोंसे सजा हुआ था। मठ-प्रांगण शङ्ख-घंटा मृदंग और करतालोंकी सुमधुर ध्वनि और भक्तवृन्द-से परिपूर्ण था। नाना स्थानोंसे लाये गये पुष्पोंकी राशि लगी हुई थी। श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दजी एवं श्रीश्रीराधाविनोद-बिहारीजी अपने चारु और त्रिभुवन पावन दर्शनोंसे दर्शकोंको मुग्ध कर रहे थे। महा-संकीर्तनके बीच परमाराध्यतम १०८ श्रीश्रीआचार्यदेव सभास्थलमें पधार कर (अपने आविर्भावके दिन) सुसज्जित सिंहासन पर विराजमान तदीय श्रीगुरुदेव श्रीलप्रभुपादका अर्चन किया और उनके चरणोंमें अञ्जली प्रदानकी। इसके पश्चात् मधुर-मधुर संकीर्तन के बीच उपस्थित त्रिदण्डिपादगण, ब्रह्मचारी एवं वानप्रस्थी तथा गृहस्थ पुरुष और महिला भक्तों ने श्रीश्रीआचार्य देवके चरणोंमें पुष्पाञ्जलियाँ अर्पण की। जो लोग दूर प्रदेशोंमें रहनेके कारण वहाँ उपस्थित न हो सके थे, उन्होंने पत्र द्वारा जो पुष्पा-ञ्जलियाँ श्रीगुरुचरणोंमें अर्पण करनेके लिये भेजी थीं, वे उनके श्रीचरण-कमलोंमें अर्पितकी गयीं। ये अभिनन्दन रूपी अञ्जलियाँ हिन्दी, बंगला, अँग्रेजी और आसामी आदि भाषाओंमें थी, जो उत्तर-प्रदेश, आसाम-बंगाल आदि विभिन्न प्रान्तके भक्तों द्वारा भेजी गयी थीं। तत्पश्चात् श्रीश्रीगुरुपाद-पद्मकी आरति और कीर्तनके पश्चात् निमंत्रित और अनि-मंत्रित सबको महाप्रसाद वितरण किया गया।

शामको कीर्तनके पश्चात भिन्न-भिन्न स्थानोंसे प्राप्त विभिन्न भाषाओंके अभिनन्दन पढ़े गये तथा श्रीश्री-गुरुपादपद्मका प्रत्यभिभाषण हुआ। दूसरे दिन श्रीचैतन्यचरितामृतसे श्रीश्रीव्यासपूजा-प्रसंगका पाठ हुआ। तीसरे दिन कृष्ण-पञ्चमी तिथिको कृष्ण-पञ्चक आदि पूजा पंचकोंकी विधिवत पूजा हुई तथा श्रीश्री-प्रभुपादजी के श्रीचरण कमलोंमें भक्तोंने श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पण की। अन्तमें सबको महाप्रसाद वितरण किया गया।

खड़गपुरमें श्रीश्रीव्यास पूजा—

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी श्रीगौर-विनोद वाणी आश्रम, सुभाषपल्ली (खड़गपुर) में उसके अध्यक्ष त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन महाराजके अदम्य उत्साहसे श्रीश्रीव्यासपूजाका चतुर्दिवसीय अनुष्ठान बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। उक्त महोत्सवमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरासे श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त मुनि महाराज, श्रीहरिदास ब्रजवासी और राम गोपाल ब्रह्मचारी; नारमा निवासी श्रीपाद मोहिनी मोहन भक्तिशास्त्री, रागभूषण महोदय और उनके सुपुत्र श्रीपाद हरिदास दास अधिकारी महोदय; प्रसिद्ध गौड़ीय मृदंगवादक

श्रीसत्य विग्रहदास अधिकारी आदि सम्मिलित हुए थे। प्रतिदिन कीर्त्तन, प्रवचन, भाषण, छायाचित्र द्वारा श्रीश्रीगौर लीला एवं कृष्ण लीलाके सम्बन्धमें उपदेशपूर्ण भाषण आदि की सुन्दर व्यवस्था की गयी थी, जिससे जनसाधारण अधिक-से-अधिक रूपमें लाभ उठा सके। अन्तिम दिन निमन्त्रित-अनिमन्त्रित लगभग चार पाँच हजार व्यक्तियोंको महाप्रसाद वितरण किया गया है।

कृष्णनगर और नन्दीगाँव (मेदिनीपुर) में १०८ श्रीश्रीआचार्यदेव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके नियामक और संस्थापक आचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस १०८ श्री श्रीमद् भक्तिप्रज्ञानकेशव गोस्वामी महाराजजीने श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सव सुसम्पन्न होनेके पश्चात् परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति दयित माधव महाराजजीके कृष्णनगर (बंगाल) में नव-प्रतिष्ठित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके २१ मार्च से २७ मार्च तक होनेवाले विराट उत्सवमें योगदान किया और वहाँकी विराट पारमार्थिक सभामें तीन दिन विभिन्न पारमार्थिक तत्त्वोंके सम्बन्ध में परम ओजस्वी भाषण दिये हैं। उक्त सभामें त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति रक्षक श्रीधर महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति सारंग गोस्वामी महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति सर्वस्व गिरिमहाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति विज्ञान आश्रम महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति विचार यायावर महाराज आदि संन्यासियोंने भी सम्मिलित होकर पारमार्थिक विषयमें भाषण दिये हैं। वहाँ से श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें पधार कर पुनः १६ अप्रैलको मेदिनीपुर जीलाके अन्तर्गत अमतल्या (नन्दीग्राम) नामक गाँवमें वहाँकी धर्मप्राण जनताके आह्वान पर शुभ विजय किये हैं। इनके साथ त्रिदण्डि-स्वामी भक्तिवेदान्त मुनि महाराज, श्रीपाद रसराज ब्रजवासी, श्रीस्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी, श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीहरिचरण ब्रह्मचारी, श्रीमुकुन्द गोपाल ब्रह्मचारी आदि संन्यासी ब्रह्मचारीगण हैं।

आजकल वे मेदिनीपुरके भिन्न-भिन्न ग्रामोंमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके विमल प्रेमधर्मका प्रचार कर रहे हैं। जगह-जगह विराट-विराट पारमार्थिक सभाओं में उनके गंभीर उपदेश पूर्ण भाषण हो रहे हैं।

बर्द्धमानमें

समितिके अन्यतम प्रचारक त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीभागवतदास ब्रजवासी, श्रीगजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारी आदि कतिपय ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर आजकल बर्द्धमान जिलेके नोवाड़ा एवं आस-पासके गाँवोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीको निर्भीक और प्रबलरूपमें प्रचार कर रहे हैं।

मथुरामें

श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज श्रीगौरवाणी-विनोद आश्रम खड़गपुर (मेदिनीपुर) बंगालके श्रीव्यास पूजा-महोत्सवमें योगदान कर काशीनगर, पाकुरतला, खाड़ी, खाड़ापड़ा कृष्णचन्द्र, बेलगाछी आदि २४ परगनाके गाँवों और श्रीरामपुर, सेवड़ाफूली, वैद्यवाटी, आदि हुगली जीलेके नगरोंमें शुद्धभक्ति धर्मका प्रचार कर तथा श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा एवं गौर जन्मोत्सवमें सम्मिलित होनेके पश्चात् गत १८ मार्च को श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें पधारे हैं। वे यहाँ पर प्रतिदिन शामको मठके प्रांगणमें अपने उपदेशपूर्ण प्रवचनों और भाषणोंके श्रद्धालु जनताका कल्याण विधान कर रहे हैं।

श्रीहरिदास ब्रजवासी, श्रीगोविन्दास ब्रह्मचारी श्रीकृष्णस्वामी ब्रह्मचारी और श्रीजगदीशदास ब्रह्मचारी मथुरा जीलेके विभिन्न गाँवोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करते हुए भ्रमण कर रहे हैं।

श्रीनवद्वीप-धामपरिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति पिछले उन्नीस वर्षोंसे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपसे श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सवका विराट अनुष्ठान प्रत्येक वर्ष बड़े समारोहसे सम्पन्न करती आ रही है। समितिने सर्व प्रथम १८६३ शकाब्द (सन १९४२ ई०) में १४ फाल्गुन से २० फाल्गुन तक—सप्ताह भरमें उक्त विराट महोत्सव सम्पन्न किया था। जगद्गुरु श्रीश्री प्रभुपादजीने सन् १९१५ ई० से आरंभ कर सन् १९३६ ई० तक (अपने अप्रकटकालके पूर्व तक) लगातार २२ वर्षों तक श्रीधाम परिक्रमा और जन्मोत्सव किये थे। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति उन्हींके पद-चिह्नोंका अनुसरण कर, अनुकरणकारियोंकी रीति-नीतिसे अपना वैशिष्ट्य संरक्षण करते हुए इस विराट सेवाका प्रचलन किया है। इस परिक्रमा सेवा में आज उन्नीस वर्षोंसे सर्वतोभावेन योगदान कर श्रद्धालु जनता सुकृति और शुद्धभक्ति प्राप्त करनेका सुयोग पाती रही है। हम परिक्रमामें योगदान करने वाली सज्जन-मण्डलीको हार्दिक धन्यवाद दे रहे हैं।

समितिके प्रतिष्ठाता और नियामक परमहंस स्वामी१०८श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महराज की नियामकतामें इस वर्ष भी २४ फाल्गुन मंगलवार से २९ फाल्गुन शनिवार तक पाँच दिनोंमें नवद्वीप मण्डलके ९ द्वीपोंकी परिक्रमा की गयी है। वर्षाके कारण इस वर्ष प्रत्येक द्वीपमें शिविर-स्थापना कर रात में वहाँ रहनेकी व्यवस्था न की जा सकी। फिर भी यात्रियोंको किसी प्रकारका कोई कष्ट आदि न हो—इसके लिये जलपान और विश्राम आदि यथा संभव हर प्रकार की सुव्यवस्था की गयी थी। आकाश मेघाच्छन्न रहने के कारण परिक्रमाके लिये मौसम बड़ा ही अनुकूल रहा; यात्रियोंको तनिक भी कष्ट न हुआ।

इस वर्ष त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज सब जगह परिक्रमा परिचालनका भार ग्रहण करने पर भी श्रीश्रीगुरुपादपद्मके कृपाशिर्वादसे तथा निम्नलिखित त्रिदण्डिपादगणकी सहायता और सहानुभूति एवं उनके हरिकथा कीर्त्तनके प्रभावसे परिक्रमाकारी यात्रियोंकी संख्या अत्यधिक होने पर भी, परिक्रमा बड़े ही सुचारू रूपसे सुसम्पन्न हुई है। त्रिदण्डिपादोंके नाम हैं—(१) त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त परिव्राजक महाराज, (२) त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त परमार्थी महाराज, (३) त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त शुद्धाद्वैती महाराज, (४) त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त मुनि महाराज, (५) त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज।

श्रीश्री गौरजन्मोत्सवके पूर्व दिन श्रीधाम मायापुर की परिक्रमाके दिन परिक्रमाकी शोभायात्राने बड़ा ही विशाल रूप धारण किया। नवद्वीप शहरकी जनता इस विराट परिक्रमा-संघकी भूयसी प्रशंसा कर रही थी। परिक्रमा-संघ पवित्र सलिला भगवती भागीरथी को पारकर जिस समय भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके आविर्भाव स्थल श्रीमायापुर योगपीठमें उपस्थित हुआ, उस समय योगपीठ मन्दिरकी परक्रमाके समय विशाल जन-समूह और उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन आदिको देखकर विरोधी भावधारावाले लोग इर्ष्या द्वेष के दावानलमें दग्ध हो रहे रहे थे। मंदिर-परिक्रमा और संकीर्त्तन के पश्चात् श्रीयुत मोहिनी मोहन, भक्ति शास्त्री राग-भूषण, महोदयने बड़े ही मधुर कंठ से पार्थना-मूलक एक सुदंर पद्का कीर्त्तन किया। पश्चात् त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराजने श्रीधाम मायपुर और श्रीगौरजन्मस्थानका माहात्म्य "श्रीनवद्वीपधाममाहात्म्य" नामक ग्रन्थसे पढ़ कर सुनाया। सबके अन्तमें समिति के संस्थापक और नियामक महाराजने ओजस्विनी भाषामें श्रीगौर-जन्म-स्थान-विरोधी सम्प्रदाय और व्यक्तियोंकी कुतर्कमूलक युक्तियोंका खण्डन करते हुए श्रीधाम तत्त्वके सम्बन्धमें भाषण दिया। पश्चात् श्रीवास-अंगन, श्रीअद्वैतभवनकी परिक्रमा कर परिक्रमा-संघ

श्रीचैतन्यमठमें जगद्गुरु श्रीप्रभुपादके समाधि-क्षेत्रमें उपस्थित हुआ। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा परिचालित परिक्रमाका वैशिष्ट्य यह है कि परिक्रमा के साथ आगे आगे पालकीमें श्रीमन्महाप्रभु, श्रील प्रभुपाद और शालग्राम-शिला (नारायण-शिला) आदि विग्रहगण पधारते हैं। उनके पीछे समितिके संस्थापक और नियामक आचार्यदेव, तत्पश्चात् भावमें विभोर होकर नृत्य करती हुई विराट संकीर्तन-मण्डली और उसके पश्चात् उमड़ता हुआ विराट जन-समूह हरि-कीर्तन करता हुआ धामकी परिक्रमा करता है।

समाधिमन्दिरमें श्रीश्रीआचार्यदेवने जगद्गुरु श्रीसरस्वती ठाकुरके प्रचार-वैशिष्ट्यके सम्बन्ध बड़ा मर्मस्पर्शी भाषण दिया। उनके पहले त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज और त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त शुद्धाद्वैती महाराजने भी श्रील प्रभुपादके अतिमर्त्य चरित्रके सम्बन्धमें भाषण दिये। इसके बाद श्रीचैतन्य मठ दर्शनकर यात्रियोंने राधाकुण्डके तटवर्ती श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजके समाधि-मन्दिरका दर्शन किया। यहाँ पर भी श्रीआचार्य देवने बाबाजी महाराजकी अति-मर्त्य शिक्षाओंके सम्बन्धमें भाषण दिये और उसमें यह बतलाया कि यद्यपि श्रील प्रभुपादजीके कतिपय कार्य-कलाप उनके श्रीगुरुदेव श्रीश्रीगौरकिशोर-बाबाजीकी शिक्षाओंके बाह्यतः विरोधी जैसे दीख पड़ते हैं; परन्तु वास्तविक बात ऐसी नहीं हैं। प्रभु-पादजीके प्रत्येक कार्य, प्रत्येक आचरण और उनकी प्रत्येक चेष्टामें गुरुभक्तिका चरम आदर्श निहित है। आचार्य देवने श्रीप्रभुपादजीके दो एक क्रिया-कलापों के उदाहरण देकर इस विषयको स्पष्ट कर दिया। उसके पश्चात् परिक्रमा-संघ चाँदकाजीकी समाधि आदिका दर्शनकर कर श्रीधाम मायापुरमें श्रीजयदेव पाट (श्रीजयदेव कविके स्थान) में उपस्थित हुआ।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी परिक्रमा श्रीगौर-जन्मोत्सवसे एक दिन पहले श्रीधाम मायापुरीमें पहुँचती है। इसलिये उस दिन मायपुरके आसापासके १०-१५ गाँवोंकी जनता श्रीआचार्यदेवका दर्शन करनेके लिये एकत्र हो जाती है। इस वर्ष भी आस पासके सभी गाँवोंके लोग जयदेव पाटमें उपस्थित थे। यात्रियोंके अतिरिक्त एकत्रित समस्त लोगोंको भी महाप्रसाद प्रचुर परिमाणमें दिया गया। प्रसाद-वित-रणका अपूर्व दृश्य देखकर सभी आश्चर्य चकित हो गये। इस विषयमें हम लोग श्रीयुत यतीन्द्रमोहन सरकार और उनके पुत्र-परिवारवर्गकी उनकी सेवा चेष्टा, आग्रह और सहानभूतिके लिये विशेष धन्य-वाद दे रहे हैं। वे प्रत्येक वर्ष समितिके परिक्रमा-संघको आह्वान कर अपने घर पर स्थान देते हैं।

श्रीश्रीगौरजन्मोत्सव

श्रीश्रीधाम मायापुरकी परिक्रमा कर तथा श्रीजय-देव-पाटमें दो पहरमें महाप्रसाद भोजन कर उसी दिनशामको परिक्रमा संघ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप लौट आया। दूसरे दिन श्रीमन्महाप्रभुजीकी आविर्भाव-तिथिके उपलक्ष्यमें मठ प्रांगण और श्रीमन्दिर रङ्ग-विरङ्गी पताकाओं, अनेक वन्दनवारों, कदली खंभो तथा आम्रपल्लवोंसे आकर्षक ढङ्गसे सजाया गया। चारों ओर आनन्दका समुद्र लहरा रहा था। मंगलारति कीर्त्तनके पश्चात सूर्योदयसे ही श्रीचैतन्य-भागवतका पारायण आरंभ हुआ, जो श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भाव काल संध्या तक अबाध गतिसे चलता रहा। बीच-बीचमें संकीर्त्तन मण्डली ने समयानुकूल दो-एक मधुर पदोंका कीर्त्तन भी किया।

संध्या होते-होते मठका विराट प्रांगण दर्शक और श्रोताओंसे खचाखच भर गया। उपयुक्त समय पर श्रीचैतन्यचरितामृतसे श्रीगौराविर्भावका कीर्तन होने लगा। उधर विराटरूपमें भोग-राग और अर्चन-पूजनकी व्यवस्था भी चलने लगी। फिर संध्यारति और तुलसी-परिक्रमाके समय उद्दण्ड-नृत्यके साथ विराटरूपमे संकीर्त्तन हुआ। उस समयका अपूर्व-भाव दर्शन कर सबलोग तन-मनकी सुधि तक भूल गये। संकर्त्तनके पश्चात् रातके ग्यारह बजे तक 'श्रीमन्महाप्रभु और उनकी शिक्षा' के सम्बन्धमें श्रीआचार्यदेवके सभापतित्वमें अनेक वक्ताओंने

भाषण दिये। श्रीयुत भागवत दास ब्रजवासी, श्रीभगवानदास ब्रह्मचारी भक्तिरंजन, श्रीहरिचरण ब्रह्मचारी, श्रीहरिदास ब्रजवासी (हिन्दी भाषामें), श्रीमद्भक्ति वेदान्त शुद्धाद्वैती महाराज, श्रीमद्भक्ति वेदान्त परिव्राजक महाराज, श्रीपाद रसराज ब्रजवासी एवं श्रीहरिदास दास अधिकारी (नरमा, मेदिनीपुरवासी) आदि वक्ताओंने श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाके सम्बन्धमें भाषण दिये। सबके अंतमें श्रील आचार्यदेवने बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें भाषण दिये। सभास्थलीमें नवद्वीप शहरके कुछ पण्डित भी उपस्थित थे। श्रील आचार्य देवके भाषणका स्तर क्रमशः बड़ा ही दार्शनिक और उच्च सिद्धान्तपूर्ण होता गया। फलतः विद्वन्मण्डली तो आनन्दातिरेकसे झूमने लगी; परन्तु साधारण जनताका उसमें प्रवेश करना कठिन हो गया। सारी सभा निस्तब्ध होकर सुन रही थी। ग्यारह बजे कीर्तनके पश्चात् सभा भङ्ग होने पर यात्रियोंको अनुकल्प प्रसाद वितरण किया गया। दूसरे दिन साधारण महोत्सव हुआ। १० बजे दिनसे आरम्भ कर रातके १० बजे तक कई हजार लोगोंको विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया।

नरमाके हरिदास दास अधिकारीने चाँपाहाटी और मामगाछीमें बड़ा ही सुन्दर भाषण दिया। श्रीपाद मोहिनी मोहन शक्तिशास्त्री, रागभूषण महोदयने सब जगहोंमें अपने सुललित कीर्तनोंसे श्रोतृमण्डलीको मुग्ध किये।

उल्लिखित त्रिदण्डिपादों और ब्रह्मचारियोंके अतिरिक्त श्रीसुदाम सखा ब्रह्मचारी, श्रीप्रबुद्धकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीमुकुन्द गोपाल ब्रह्मचारी, श्रीपूर्णप्रज्ञ दासाधिकारी, श्रीस्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी, श्रीनिवास दास अधिकारी, श्रीगजेन्द्रमोक्षन दासाधिकारी, श्रीयुत नारायण दासाधिकारी (बेगमपुर), श्रीयुत भुवनमोहन दासाधिकारी आदिकी महत्वपूर्ण सेवाचेष्टाएँ अतीव सराहनीय रही हैं।

—निजस्व संवाद

'श्रीभागवत-पत्रिका' के सम्बन्धमें विवरण

[१] प्रकाशनका स्थान—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरा।

[२] प्रकाशनकी अवधि—मासिक।

[३] मुद्रकका नाम—श्रीहैमेन्द्र कुमार।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (भारतीय)।
पता—साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा।

[४] प्रकाशकका नाम—श्रीरसराज ब्रजवासी।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (सारस्वत गौड़ीय ब्राह्मण)।
पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

[५] सम्पादकका नाम—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (सारस्वत गौड़ीय ब्राह्मण)।
पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

[६] पत्रिकाका स्वत्वाधिकारी—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तरफसे उसके प्रतिष्ठाता और नियामक परमहंस स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज।

मैं, रसराज ब्रजवासी, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारीमें और विश्वासके अनुसार सत्य हैं।

१५ मार्च, १९६०।

प्रकाशक—
रसराज ब्रजवासी